THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180588

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/V32C Accession No. G. H. 1826

Author वसावड़ा, इन्द्र।

Title चन्दा। १९५३.

This book should be returned on or before the date last marked below.

राजकमल कथा साहित्य — ६

चन्दा

(सामाजिक उपन्यास)

For f[illegible] of opinion

इन्द्र वसावड़ा

राजकमल

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

कापी राइट, १९५२

मूल्य एक रुपया चौदह आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।
मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

एक

इमली के सघन वृक्षों की गहरी छाया को, अपनी निर्मल गोद में छिपाती, गाँव की प्रदक्षिणा करती, कल-कल निनाद करती उजाड़ नदी, जब सोरती के मैदान के पास आती है, तब वह गाँव के सौन्दर्य का पान करने मानो एक क्षण रुक जाती है। उसका शीघ्रगामी जल, उस छोटे से पुल के पास आकर मानो ठहर जाता है, टीले पर खड़े ग्राम के घरों को देखने में तल्लीन बन जाता है, उस टीले पर स्थित उस जीर्ण पीपल के वृक्ष से बातें करने रुक जाता है, और फिर, उस पुल पर आते-जाते वाले मनुष्यों के सुख-दुःख पूछ उस सकड़े, पुराने, जीर्ण-शीर्ण पुल के दरवाजों में से वेग से बहने लग जाता है।

रात्रि के ग्यारह बजने का समय है। अमावस्या की काली रात्रि साँय-साँय कर रही है। तारिकाओं का क्षीण प्रकाश नदी के जल को और भी गम्भीर बना देता है।

इस जीर्ण पुल पर एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की खड़ी है। बिखरे बाल, फटी साड़ी, हज़ारों छिद्र वाली मैली बनियान! उसकी आँखों में अद्भुत तेज!

कब से यह लड़की, इस पुल पर खड़ी टुकुर-टुकुर गाँव की ओर देख रही है!

दस-दस मील चलकर वह थकी-मांदी रात के नौ बजे इस गाँव

में आ लगी थी। कहीं से उसे खाने को नहीं मिला था। इसी पुल पर होकर टीले पर चढ़ जब वह गली में पहुँची और भीख माँगने लगी तब उसे लगा कि इस ग्राम के लोगों के हृदय में दया नहीं है। सेठ कुन्दन मल के मकान पर आकर उसने संकेत से भिक्षा माँगी तो पैर से जूता निकालकर सेठजी बोल उठे—"मर-मर गूँगी! माँगने आई है सुसरी···!"

इधर-उधर चक्कर काटकर वह हलवाई की दूकान पर आ लगी थी। ज़मीन पर गिरे हुए दो-चार सेव उठाकर उसने खा लिए थे और इसके बाद गली पार कर टीले पर आ खड़ी हुई थी। सामने नीचे, नदी का सँकड़ा पुल है; किनारे पर पुराना पीपल का वृक्ष है। नदी का स्वच्छ जल पुल में से मधुर ध्वनि करता बह रहा है और ठंड भी तेज़ पड़ने लगी है। वृक्ष पर बैठा उल्लू कभी-कभी चीत्कार कर उठता है। सोरती का मैदान दिखाई नहीं देता; पर वहाँ से यदा-कदा सियारों का रुदन सुनाई पड़ जाता है।

वह टीले पर से नीचे उतरने लगी और पुल पर होकर सामने के मैदान की तरफ़ जाने को आगे बढ़ी। पुल के मध्य में आकर वह खड़ी हो गई और आकाश की ओर देखने लगी।

"ए! रास्ता छोड़!" उसके कान में शब्द पड़े। उसने देखा—पुल पर सामने से कोई महाशय आ रहे हैं। सिर पर पगड़ी है, हाथ में लाठी और शरीर पर दुशाला लिपटा है।

"अरी! सुनती है कि बहरी हो गई है?"

वह एक तरफ़ थोड़ा खिसक गई।

"उँह! कमज़ात! रात के बारह बजे पुल पर मरते शर्म नहीं आती।" और यह कहकर अपने शरीर को उस छोकरी के शरीर से घिसते और इस स्पर्श के कारण अत्यन्त क्रोध प्रदर्शित करते, गजानन पंडित आगे बढ़े। जाते-जाते बोलने लगे—

"उँह! कम्बख़्त को खड़ा होना भी नहीं आता। राँड शरीर को

सिकोड़ती ही नहीं है। खबर नहीं स्पर्श मात्र से···ओह शम्भो! शम्भो!! कैसी ठंड है? ठाकुर साहब ने किसी प्रकार भी जल्दी नहीं निकलने दिया, अन्यथा कभी का गाँव में आ पहुँचा होता। शम्भो, शम्भो!"

परन्तु उन्हें इन विचारों में पता न चला कि उनके पीछे ही जिसके स्पर्श मात्र से···वही चली आ रही है।

"एँ-एँ!" कोई भुनभुनाया।

पीछे फिरकर देखा तो वही लड़की।

"क्या है?" पंडितजी गरज उठे।

मुँह के पास हाथ लगाकर उसने जतलाया कि उसे भूख लगी है।

"भूख लगी है!" कटाक्ष करके पंडितजी बोले और फिर उसके सम्पूर्ण शरीर को अपनी आँखों से पी जाना चाहते हों, ऐसे देखने लगे। बिखरे बाल, फटी हुई बंडी में से बाहर निकला पड़ता उसका यौवन—सम्पूर्ण देह-दृष्टि मानो पुकारकर कह रही थी···"मैं यौवन के प्रांगण में आ खड़ी हुई हूँ; ग़रीब हूँ, गूँगी हूँ, इससे क्या?"

"भूख लगी है! मर यहाँ से।" उसे धक्का मार पंडितजी टीले पर चढ़ने लगे, पर उनकी भारी देह, दुशाले में लिपटा उनका स्थूल शरीर चढ़ाई पर बढ़ने को मानो मना कर रहे थे। लाठी का सहारा लेकर हाँफते-हाँफते वे ऊपर चढ़ने लगे। पीछे-पीछे गूँगी भी चढ़ने लगी। बड़ी कठिनाई से ऊपर पहुँचकर पंडितजी ने देखा तो वह···डाइन···पीछे लगी थी।

"पर है क्या?" पंडितजी ने पीपल के नीचे खड़े होकर प्रश्न किया।

छोकरी ने अपनी गूँगी भाषा में हाथ मुख के पास ले जाकर समझाया—"भूख लगी है।"

"गूँगी है क्या?"

"ऊँ-ऊँ···ऊँ···"

"अच्छा-अच्छा कम्बख़्त····रात के बारह बजे···ले मर यहीं····" और यह कहकर उन्होंने युवती का हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ़ खींचा। गूँगी साश्चर्य यह लीला देखने लगी।

"भूख लगी है···!" ये शब्द अब भी उसके मुँह में ही थे, और गूँगी का हाथ पकड़कर पंडित जी अपनी तरफ खींच ही रहे थे, तभी सामने के घर का द्वार खुला और पण्डितजी लड़की को धक्का मारकर गरज उठे—

"मर राँड चुड़ैल। शम्भो! शम्भो!! कहाँ से आ गई यह चुड़ैल···" और फिर एक लात लगाकर पंडितजी खुले हुए दरवाज़े में घुस पड़े और साँकल लगा दी। ज़मीन पर बैठकर बोलने लगे—

"हरि, हरि, बचाया तूने मेरे प्रभो! खा ही जाती नहीं तो।"

"पर है कौन?" पंडिताइन जी बोलीं।

"होगी कौन? चुड़ैल···चुड़ैल····मैंने अपनी आँखों देखा है।"

"वह तुमसे चिपट गई थी या तुम उससे चिपट गए थे?" पंडिताइन जी बोल उठीं।

"शम्भो, शम्भो! तैंने ही लज्जा रखी मेरे पिता···अपनी आँखों देखा है। पैरों पर से ही पहचान गया। राँड चिपट पड़ी। वह तो ब्रह्म-शब्द के प्रभाव से···राँड को धकेल दिया नहीं तो···"

"नहीं तो तुमको पकड़कर···"

"हरि···हरि! बोल मत, बोल मत! पानी ला! मुख प्रक्षालन करने दे। ला लोटा शरीर पर उँडेल लूँ···और दो-चार गायत्री जप डालूँ। तू तब तक खाने को ला। कड़ी भूख लगी है।"

"इतना विलम्ब क्यों हुआ?"

"विलम्ब क्यों हुआ? अरे जानती नहीं, ठाकुर साहब के यहाँ यज्ञ कराने गया था न? देर क्यों हुई! ठाकुर साहब निकलने दें तब आऊँ न? आते-आते बारह बज गए। पुल पर देखता हूँ तो····शम्भो···· लज्जा रखी तुमने। कम्बख़्त···" और यों कहकर पंडितजी ने पानी

के एक ही लोटे से स्नान करके, सात गायत्री मन्त्र जप अपनी शरीर-शुद्धि कर ली और सुन्दर थाली में परोसी हुई खाद्य-सामग्री को निपटाने में निमग्न हो गए।

इसी समय घर के बाहर खड़ी गूँगी खाने का ही विचार कर रही थी। ईश्वर ने इतनी-इतनी खाद्य-सामग्रियाँ बनाई हैं। खेतों में इतना-इतना अनाज पैदा होता है, हलवाइयों की दूकानों पर इतनी-इतनी मिठाइयाँ दिखाई देती हैं; पर फिर भी उसे क्यों कुछ खाने को नहीं मिलता? अनेक दुख और यातनाओं को सहकर वह जड़वत् बन गई थी। पंडितजी की लात और गालियाँ उसके मन में साधारण-सी बात थी। आकाश की ओर देखती वह कितनी देर तक टेकरी पर पर पीपल के नीचे खड़ी रही। साँय-साँय करती रात बीती जा रही थी। आकाश में तारे झलकते थे; पीपल पर बैठा उल्लू कभी-कभी चीत्कार कर उठता था। धीरे-धीरे पुल पर उतरकर वह युवती नदी के किनारे पर अदृश्य हो गई।

रात के एक बजे अठारह वर्ष का एक युवक बरगद के वृक्ष से बँधी हुई डोंगी खोल रहा था। सेठ कुन्दन मल ने यह डोंगी बँधा रखी थी। ग्राम के इस ओर बड़े बरगद के पेड़ तले यह नौका पड़ी रहती थी। डोंगी को खोल किनारे पर से छलाँग मार गोपाल उसमें कूद पड़ा। छप-छप करती नौका पानी में आगे बढ़ने लगी। किनारे खड़े वृक्ष ठंड से मानो काँप रहे थे; पर गोपाल ने शरीर पर खादी की बंडी के अतिरिक्त कुछ नहीं पहन रखा था। हाथ में डाँड था और वह एक गाना गाता आगे बढ रहा था। थोड़ी देर में बाँसों का घना वन आया। हवा सनसनाती बह रही थी और बाँसों के वन में एक विचित्र संगीत पैदा कर रही थी। साधारण मनुष्य की तो ऐसी रात्रि में घिग्घी बँध जाय; पर गोपाल को यह सब साधारण-सा लगता था। बाँसों के वन की घनी छाया नदी के जल को और भी श्याम और भयंकर बना रही थी।

सामने के किनारे पर से सियारों का रुदन सुनाई पड़ रहा था। झींगुर झनकार कर रहे थे। आगे ग्राम का श्मशान आता था। लोग कहा करते थे कि श्मशान में अमावस की रात में जाना कठिन काम है। भूत, पिशाच, डाकिन नर-मांस और हड्डियों से खेलते दिखाई देते हैं; वहाँ जाने का कोई साहस नहीं कर सकता।

बाँस के वन को पार करके नौका श्मशान के पास आ लगी। कभी-कभी अग्नि की लपटें दिखाई पड़तीं, कभी पशु पानी पीता हो, ऐसी 'छुप-छुप' की आवाज आती तो कभी कोई रोता हो, ऐसा स्वर सुनाई पड़ता; पर गोपाल तो अपनी धुन में मस्त था। गाना गाता वह नौका के डाँड चला रहा था; पर धीरे-धीरे रोने का स्वर स्पष्ट होने लगा। उसे लगा—अवश्य कोई रोता है। या यह केवल भ्रम है? उसने भूत-प्रेतों की कई कहानियाँ सुनी थीं, इससे विचार आया कदाचित् भ्रम हो; पर रुदन की आवाज इतनी दर्द-भरी थी कि उसे हुआ कि जानना चाहिए यह क्या है। कोई सचमुच रोता है या केवल धोखा है? उसने अपनी नौका किनारे की तरफ लगा ली। तट पर आकर वह नाव में से किनारे पर कूद पड़ा। श्मशान की भयंकरता ··चारों ओर बिखरे हुए अस्थि-खण्ड और राख; कभी-कभी दिखाई पड़ जाते अग्नि के भभके! एक क्षण वह रुक गया, पर दूसरे ही क्षण अपने सम्पूर्ण शरीर को झकझोर वह आगे बढ़ा। बेर की एक झाड़ी के पास कोई सिकुड़ा हुआ पड़ा था और रो रहा था।

"कौन?" गोपाल ने आवाज़ दी।

सिकुड़ा हुआ शरीर हिला और बैठ गया। स्त्री? इस रात्रि में, इस भयंकर भूमि में एक स्त्री? गोपाल ने अपनी आँखें फाड़ीं और देखा···हाँ, सोलह वर्ष की वस्त्रहीन-सी पर सुन्दर बाला! दुर्बल और क्षीण!

"क्या है? क्यों रोती है?" गोपाल ने पूछा।

"ऊँ···" पेट और मुख को बताकर उसने प्रकट किया—"बड़ी

भूख लगी है।"

"भूख लगी है ?"

सिर हिलाकर उसने स्वीकार किया।

"खाने को कुछ नहीं मिला ?"

"ना" उसने प्रकट किया।

"यहाँ क्यों पड़ी है ? कोई नहीं है क्या तेरे ?"

दूसरे प्रश्न का उत्तर सिर हिलाकर उसने दिया—

"नहीं, कोई नहीं मेरे। मैं बिलकुल अकेली हूँ।"

"खाओगी ?"

"हाँ," गरदन घुमाकर जवाब दिया।

"चल उठ !"

युवती उठी, पर उठते ही लड़खड़ाने लगी।

"पकड़ मेरा हाथ !"

युवती ने गोपाल का हाथ पकड़ा और गोपाल हाथ के सहारे उसे किनारे लाया।

"कूद पड़ नौका में !"

पर युवती टुकुर-टुकुर देखने लगी। कूदने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

"तो इधर आ। ले तुझे उठाकर नाव में चढ़ा दूँ।" और यह कहकर गोपाल ने उसे उठा लिया और नौका में बिठा दिया। फिर स्वयं भी कूदकर नौका में बैठ गया।

"खाने को मिलेगा। ले देख यहाँ से दो मील दूर सेठ कुन्दन मल का बगीचा है। उसमें अमरूद, जामुन, सीताफल, आम, कटहल आदि के झाड़ हैं। वहाँ से कुछ-न-कुछ ला दूँगा।" और यह कहकर वह नौका के डाँड चलाने लगा।

नौका चलने लगी; श्मशान पारकर बाँसों के दूसरे जंगल में आ लगी। युवती ठंड से अथवा डर से थर-थर काँप रही थी। उसके दाँत

कटकटा रहे थे।

"क्यों डरती है? ठंड लगती है?"

"ऊँ......"

"तो पास क्यों नहीं आ जाती," गोपाल ने कहा।

युवती पास आई और गोपाल के शरीर से सटकर बैठ गई।

"गूँगी है? बोल नहीं सकती?"

उसका उत्तर उसका भाव इतनी दया की याचना से भरा हुआ था, उसमें इतनी लाचारी भरी थी कि गोपाल का दिल सहानुभूति से भर गया। बेचारी बोल नहीं सकती, कैसी विडम्बना!

"ले, कोई हर्ज नहीं," और गोपाल बोला। "डरती तो नहीं?"

बाला की आँखों से आँसू गिरने लगे। इतनी सहानुभूति, ऐसा स्नेह शायद किसी ने उसे नहीं बताया, इसी से तो उसकी आँखों से पानी झर रहा था। एक गरम बूँद गोपाल के हाथ पर गिरी और वह चौंका।

"ले, अब भी रो रही है?"

थोड़ी देर में बाँसों का वन भी निकल गया और नौका आगे बढ़ने लगी। झिल्लियों की झनकार दोनों किनारों को मुखरित कर रही थी। कभी बड़े-बड़े वृक्षों की घनी छाया के नीचे से नौका निकलती थी तो कभी घनी झाड़ियों की सघन छाया के नीचे से। गोपाल ने अपनी बाँसुरी बजाना शुरू किया। बाला गोपाल के निकट बैठी सुनती रही। कुछ बोली, न हिली, न डुली।

"ले, यह आया बगीचा। हो जा तैयार खाने को तू तो यहीं बैठी रह। मैं अभी फल ले आता हूँ। समझी?"

बाला ने सिर हिलाकर अनुमोदन किया। गोपाल कूदा। सामने ही बड़े वृक्ष दीख रहे थे। एक टीले पर बगीचा था। बड़े-बड़े जामुन के, इमली के, आम के वृक्ष लगे थे। इस तरफ़ केलों के वृक्ष थे दूसरी ओर थे अमरूदों के। और दाहिनी तरफ़ अरण्ड ककड़ियाँ

खड़ी थीं। बगीचे के मध्य में महादेवजी का मन्दिर था।

थोड़ी ही देर में केले, पपीते वगैरह लेकर गोपाल नाव पर आ पहुँचा।

"ले खा!"

बालक की तरह गूँगी खिल गई, और सहर्ष खाने लगी। पेट भर खाकर पानी पी, गोपाल का हाथ पकड़ वह उसके सामने देखने लगी।

"भर गया पेट?"

"ऊँ……."

"तीन बजेंगे। चल बैठ नाव में। चार-साढ़े चार बजे से पहले ही तो नाव को उस बड़ के नीचे बाँधकर भाग जाना पड़ेगा। सवेरे उठकर दूसरे काम-धन्धे भी करने हैं। चल!"

डोंगी चलने लगी। गोपाल भी विचारधारा में बहने लगा। कितनी ही बार वह इस प्रकार रात में नौका-भ्रमण के लिए निकला है; पर ऐसा अनुभव तो उसे किसी भी दिन नहीं हुआ। कौन है यह लड़की? कहाँ से आई होगी?"

"छप…छप…छप" डाँडों की आवाज, साँय-साँय करती रात्रि, झीं-झीं करते झींगुर…और नौका में धड़कते दो हृदय…एक निर्दोष और कृतज्ञता के बोझ से दबा हुआ, दूसरा आज़ाद और बेफिक्र गाने गाता हुआ। वृक्ष निकलते जा रहे हैं, झाड़ियाँ पीछे रह रही हैं, बाँस का वन भी छूट गया, श्मशान भी पार हो गया, बाँसों का पहला वन भी पीछे रहा और बड़ दिखाई पड़ा।

साढ़े चार का समय होगा। बड़ी ठंडी हवा चल रही है। बस बड़ के पास जाकर नौका लगी।

"कौन है यह कम्बख्त?" नौका से अपनी विशाल देह टकराते ही गजानन पंडित भड़क उठे। और फिर शम्भो, शम्भो, कैलाशपति… का जाप जपने लगे।

"कौन है कम्बख्त?…बोलता नहीं सुसरा…."

"यह तो···यह तो मैं···"

"कौन गोपाल ?"

"हाँ !"

"हरामखोर ! कमीने !! कमजात !!! कमबख्त !!!! रात को नाव में बैठकर कहाँ मरने गया था ?" और फिर नौका के पास आकर, उसमें बैठी दूसरी आकृति को देख पंडितजी बोल उठे—"और यह कौन ?"

"कोई नहीं," गोपाल के मुँह से निकल गया ।

"कोई नहीं, बोल है कौन ?" दूसरे व्यक्ति का हाथ पकड़कर··· "ओह ! गूँगी···शंकर ! शंकर !! ऐसी नीचता !!! दुष्ट, गाँव में कैसे मुँह बताएगा । मर यहां से—कर मुँह काला।" और ऐसा कहकर उन्होंने अपने विशाल नेत्र गोपाल के सामने फाड़े ।

गोपाल नौका से नीचे उतरकर चलता बना ।

नाव में केवल रही गूँगी और जल में खड़े थे गजानन पंडित ।

पंडित गजानन को इस प्रकार जल में खड़ा रहना नहीं सुहाया और वे नौका में चढ़ गए । फिर गूँगी का हाथ पकड़कर बोले—

"हरामज़ादी ! उसके साथ रात में क्या करने गई थी···सारे गाँव में बात···"

गूँगी की आँखों में अश्रु थे । अपने दोनों हाथ जोड़कर वह दया की याचना कर रही थी ।

"दया ! दया !! मुफ्त में दया चाहिए क्या ? दया ! इधर आ··· इधर मर····" और फिर पंडित गजानन ने गूँगी को खींचकर अपनी छाती से चिपका लिया·····और···

स्त्रियों के लिए। दोनों घरों के द्वार आमने-सामने आये हुए हैं और एक घर से दूसरे में जाने के लिए गली का रास्ता-मात्र पार करना पड़ता है।

स्नान से निपट जब बाबू राधे मोहन तख्त पर बिराजे तब तक गोपाल उनके लिए जलपान ले आया था।

"वाह गोपाल वाह ! क्या बनाया है ?"

"गुलाब-जामुन हैं और मठरी।"

"गुलाब जामुन ? वाह भाई वाह ! और मठरी ? जीता रह, जीता रह," मुख में पानी आने लगा और बाबू राधे मोहन सूर्य की ओर मुख करके दो-चार बार हाथ जोड़ पट्टे पर बैठ गए।

"सन्ध्या कर ली राधे ?" सामने के घर में से द्वार में आते ही माता ने पूछा। नाक में बड़ी-सी नथ, सफेद बाल, मुख पर झुर्रियाँ, स्नेहपूर्ण चेहरा····राधे मोहन की माता सारे गाँव मे पूज्या थीं।

"संध्या ? ओह अस, सन्ध्या कर तो ली। क्यों गोपाल। अभी-अभी सूर्य को नमस्कार किया न ?"

"खा तो ले।"

"हाँ, हाँ, यही विचार करता था, निपट ही लूँ।" और यह कहकर वे पट्टे पर बैठकर गुलाब-जामुन उदरसात् करने में जुट गए।

इसी समय दरवाज़े में पंडित गजानन की विशाल काया दिखाई पड़ी।

"शम्भो ! शम्भो !!"

"कौन ? गजानन पंडितजी ?"

"राम-राम माताजी !" माताजी को प्रणाम कर, पेट पर हाथ फेरते हुए पंडितजी बोले—"क्यों राधे मोहन बाबू, कुशल वर्तते न ?"

"कुशल-कुशल, पधारो-पधारो, बिराजो-बिराजो, तख्त पर बिराजो।"

"नहीं-नहीं यहीं···"

"नहीं-नहीं, बैठिए न, अरे गोपाल !"

"जी !"

"देखता क्या है ? पंडितजी के लिए मिष्टान्न···"

"मिष्टान्न, मिष्टान्न का कुछ काम नहीं । मैं तो···"

"अरे, ऐसा हो सकता है पंडितजी ?"

"अच्छा तो ।"

जब गोपाल एक तश्तरी में गुलाब-जामुन रख गया तब पंडित जी ने उसकी ओर एक तीक्ष्ण वेधक दृष्टि डाली और पूछा—"क्यों गोपाल, पढ़ना-बढ़ना तो ठीक चल रहा है न ?"

गरदन हिलाकर ही गोपाल ने उत्तर दे दिया ।

"तू है ब्राह्मण का बालक और उदार-हृदय हैं बाबू राधे मोहन कि तुझे घर में बच्चे की तरह रखा है, वरना आज भीख माँगता-माँगता गाँव-भर में भटकता होता ।"

इसका जवाब भी गोपाल ने नहीं दिया ।

"राधे बाबू ! सच कहता हूँ उस दिन गोपाल की माँ दुखी होकर कहने लगी—पंडितजी ! तुम्हीं एक मेरे गोपाल के रक्षक हो । मेरे कौन है ! सात मील चलकर रोज़-रोज़ पढ़ने कैसे आए गोपाल ? तुम्हीं कुछ बन्दोबस्त करो न पंडितजी । मैंने कहा—गोपाल की माँ ! अरे, जब तक पंडित गजानन जीवित है तब तक तुम निश्चिन्त रहो । गोपाल को ? ओ ! इसमें क्या ? हमारे यजमान राधे बाबू का नाम नहीं सुना है ? कहने भर की देर । तू खुद ही देखना न···गोपाल के रहने का वहीं ठीक हो जायगा और···शम्भो शम्भो ! ऐसा उदार हृदय है आपका···अब तो बैठी-बैठी स्वर्ग में तुमको आशीर्वाद देती होगी बेचारी । अरे गोपाल···पानी···"

"ठहरिए, ठहरिए, एक-दो गुलाब-जामुन···"

"नहीं-नहीं ।"

"अरे···" और इन्कार करते-करते भी फिर आधे दर्जन गुलाब-

जामुन पंडितजी के पेट में चले ही गए और खाते-खाते वे कहने लगे—“हूँ···हूँ···हूँ···माताजी तुम्हारा प्रेम तो·······जाने मैं तो बालक ! हें···हें···हें····खाने के सम्बन्ध में तो जानो अब तो खाया जाता नहीं पर हाँ, याद आती है दस बरस पहले की बात ! मथुरा से एक चौबे जी आए थे डाक्टर बाबू के घर । भोजन का मुझे भी निमन्त्रण ! दोनों बैठे खाने ! बीच में डाक्टर बाबू बोले—देखते हैं कौन अधिक खाता है ? और राधे बाबू, फिर तो क्या खाया है क्या खाया है··· और अन्त में जीत हुई मेरी···हें हें हें” और ऐसा कहकर फिर बोले, “गोपाल ! ला ला पानी, नहीं तो माताजी मेरा पेट ही फाड़ डालेंगी ।” और फिर पानी पी, साफे में से बीड़ी निकाली, हुक्के की चिलम के अंगारे से जलाई और फूँकने लगे ।

“पंडितजी !” माताजी ने पूछा ।

“जी !”

“रुद्री कब से शुरू करोगे ?”

“आप कहें तभी से ।”

“अच्छा कहला दूँगी ।”

“अवश्य, अवश्य ! अरे गोपाल ! सुपारी का टुकड़ा लाना तो ।”

और इसके पीछे माताजी गली पार करके सामने के घर में चली गईं और जाते-जाते कहती गईं—“राधे अब विलम्ब मत कर । काम-काज निपटा, भोजन कर ऑफ़िस जाना है । गोपाल तू भी अपना पढ़ना-लिखना निपटा ले ।”

“हाँ हाँ, रे अच्छा तू अपना काम देख,” राधे बाबू बोले और फिर हुक्के की नली मुँह में रखकर पूछने लगे—“हाँ तो पंडितजी ! इतने दिन तक दिखाई क्यों नहीं दिये ?”

“अजी साहब ! ठाकुर साहब के गाँव गया था ।”

“क्यों ?”

“यज्ञ-याग करने । क्या स्वागत-सत्कार किया है मेरा, अहा हाहा····

मैं गया कि ठाकुर साहब बोले—शाबाश, महाराज, शाबाश! पधारो पधारो! ब्राह्मण बिना यज्ञ कैसा—और दस रुपये दक्षिणा और दो धोती जोड़ा और अनाज····"

"पर पंडितजी! उस बात का क्या ?"

"ओह! वह···ये तो रजवाड़े हैं, ऐसे ही चलता है। तो बस अब आज्ञा चाहता हूँ। मेरे····"

"अजी बैठिए, बैठिए न।"

"नहीं-नहीं, मेरे अभी तो···"

"अच्छा तो फिर आइएगा।"

"ज़रूर, ज़रूर आऊँगा न! यह तो मेरे यजमान का घर है। यहीं न आऊँ तो फिर कहाँ जाऊँ ? नरक में! हें····हें" और फिर अपनी तोंद पर धोती को खींच ठीक कसकर, हाथ में लाठी ले, शरीर पर खादी की मोटी चादर ओढ़ गोपाल की तरफ़ देख बोलने लगे—

"गोपाल!"

गोपाल किसी काम में लगा था।

"सुनता है कि नहीं ?"

गोपाल ने देखा।

"देख, भले घर का लड़का है तू···नाम पर बट्टा मत लगाना। मेरे बाप! नहीं तो हमारा इस गाँव में मुँह बताना भी मुश्किल हो जायगा···क्यों ठीक है न राधे बाबू! मेरी तो बात ठीक···पर सारे गाँव में गोपाल के पराक्रम की कथा कही जाती है। मुझसे क्या छिपा है ? क्यों ठीक है कि नहीं राधे बाबू! लोग तो हैं खोटे। पर हम दूसरों की बाड़ी में क्यों जायँ ? क्यों, ठीक है न राधे बाबू! वे सेठ कुन्दनमल जी और दानमल जी कहते थे कि वह तुम्हारा गोपाल हमारे बच्चों को मारता है और धमकाता है। सो भैया! ग्राम में रहना है, जंगल में नहीं। क्या समझा ? अच्छा···ले···क्यों राधे बाबू!" और ये बड़ा-सा भाषण सुना, राधे बाबू के पास से "हां" कहलवाकर पंडितजी जब

गली में होकर राधाजी के मन्दिर की तरफ चलते बने तब गोपाल ने एक लम्बा निःश्वास लिया। क्षण-क्षण में उसे डर लग रहा था कि रात्रि की बात कदाचित् अभी कह डालेंगे। राधे बाबू क्या जानें क्या समझेंगे और···पर वे गए।

राधे बाबू तख़्त पर बैठे और गोपाल से कहने लगे—

"गोपाल !"

"जी !"

"मेरा वह रजिस्टर तो ला।"

और जब पीले खादी के कपड़े में बँधा हुआ रजिस्टर आया तब बाबू राधे मोहन ने आँखों पर अपना पुराना ऐनक चढ़ाया और रजिस्टर में कुछ लिखने लगे। इधर गोपाल कोई पुस्तक खोलकर पढ़ने लगा।

थोड़ी देर तक रजिस्टर में कुछ लिखने के बाद, गम्भीर मुद्रा से सिर खुजलाते हुए बोले—"गोपाल !"

"जी !"

"तू जानता है, यह कितना कठिन काम है ?"

"जी"

"क्या बताऊँ ? अरे चक्कर आ जावें चक्कर इस खाते में नाम भरने में। इसमें उमर, इसमें धन्धा···इसमें···" और फिर ऐनक को नाक की नोक पर लाकर कहने लगे—"राधे, राधे ! ऐसा काम किसी को करना न पड़े।" गोपाल हँसता-हँसता यह सुन रहा था। यह पहली बार उसे सुनना नहीं पड़ा था। रोज़ का ही यह कार्यक्रम था।

बाबू राधे मोहन बहुत थोड़ा पढ़े थे। उनके पिता एक अत्यन्त बुद्धिमान् वकील थे। खूब पैसा कमाया था; पर उनके एकमात्र पुत्र राधे की पढ़ने में रुचि नहीं थी। बहुत प्रयत्न करते हुए भी जब सरस्वती देवी पुत्र पर प्रसन्न न हुई तब इस गाँव की अदालत में थोड़ा-बहुत काम सीखने के लिए राधे बाबू को कहा गया। थोड़ा-बहुत सीखे ही थे कि पिता का देहान्त हो गया और एकाएक घर का सारा भार इस

भोले और अनुभवहीन राधे बाबू पर आ पड़ा । पन्द्रह रुपये की नौकरी करके आज सात-आठ वर्ष से यह गृह-संसार चलाते थे । पत्नी को पति की अकर्मण्यता के समाचार सुनकर कभी-कभी दुख अवश्य होता था; पर वह मन मारकर कहती—"है सो ठीक ही है । ये तो शम्भु-जैसे भोले हैं, शम्भु जैसे ।" और इन शब्दों में ही उसकी सारी कथा, सारा दुख समा जाता और उसका हृदय हल्का हो जाता । पिता का पुरुषार्थ से संचित किया हुआ धन धीरे-धीरे समाप्त होने लगा; पर इन लोगों का विशाल हृदय किसी प्रकार भी छोटा होना स्वीकार नहीं करता था । पिता की मृत्यु के उपरान्त भी घर के सारे व्यवहार वैसे ही रहे । अतिथि-सत्कार, ब्राह्मण-गौ-सेवा, विद्यार्थियों की ओर सहानुभूति तथा दान; ये सब वैसे ही रहे और इसी से पाँच वर्ष पहले फटी कमीज और घुटनों तक फटी हुई बिलकुल मैली धोती पहनकर जब गोपाल इस घर में आया तब तुरन्त ही उसको इस घर में स्थान मिल गया । पण्डित गजानन ने कहा न होता तब भी गोपाल का निर्दोष, गम्भीर और दुखी चेहरा देखकर ही माताजी ने उसको घर में जगह दे दी होती । घर की पुरानी मिश्राणी को भी माताजी छोड़ नहीं सकी थीं । बहुत ही कहा—"घर में बहू आई है, बनावेगी, अब यह व्यर्थ का खर्च किसलिए ?" तब जवाब मिलता—"होगा, सब अपने-अपने भाग्य का खाते हैं ।" सोचती, इतने वर्ष से घर में है । किस प्रकार उसे घर से बाहर निकाल दे ? और इस प्रकार घर की संचित लक्ष्मी धीरे-धीरे खर्च होने लगी । माता का इस ओर ध्यान था । कभी-कभी दुख भी होता; कुछ शौकिया खर्च कम भी किये; पर हृदय की विशालता और उदारता किसी प्रकार कम नहीं की जा सकी ।

गोपाल घर का ही आदमी हो गया । भाभी के साथ उसकी अद्भुत मैत्री थी । वह ऐसी गम्भीर प्रकृति का था कि किसी से बोलता-चालता नहीं; पर भाभी के पास तो उसके हृदय के द्वार जाने क्यों खुल जाते और रात के समय आँगन में जब खाट बिछाकर भाभी सोती हो तब

गोपाल आज पाँच वर्ष से इस ग्राम की पाठशाला में पढ़ता था। पर उसको पढ़ने की अपेक्षा खेलने-कूदने और घूमने में अधिक आनन्द आता था। यों हर साल वह पास होता था; पर पढ़ने की अपेक्षा वह बुद्धि के बल ही सफलता प्राप्त करता, ऐसा भाभी मानती थी। रात के समय सोने से पूर्व गोपाल भाभी को दिन-भर के अपने पराक्रम की कथा कह सुनाता। तोताराम मास्टर की चोटी किस प्रकार काटी; सेठ कुन्दनमल और दानमल के लड़कों की कलमें किस तरह छीनीं; अथवा सुखपाल माली की बाड़ी में से किस तरह, कब और कितने अमरूद तोड़े; रात के समय सुक्खू माली के खेत में से किस प्रकार और कितनी गाजर खोद लीं और नदी-किनारे जाकर उड़ाईं; आम पर चढ़कर, कच्चे फल तोड़, जेब में भरकर, माली आते ही नदी में कैसी कुदान मारी और कैसी डुबकी मारकर दूर निकल भाग गया; सेठजी के बगीचे में से पक्के केलों का झुमका किस रीति से तोड़ लाया—इत्यादि-इत्यादि अपने अनेक पराक्रम-भरे कारनामे वह भाभी को सुनाता। भाभी ये सब सुनतीं; पर एक शर्त थी कि भाभी इन सब बातों को किसी से भी कहे नहीं। और आज दिन तक भाभी ने गोपाल के पराक्रम की कहानियाँ अपने हृदय के एक कोने में संचित कर रखी थीं।

"गोपाल !" भाभी की आवाज़ थी। श्याम-वर्ण, नाक, कान में मोटी गोल बालियाँ, पैर में नूपुर, सुन्दर चेहरा !

"भाई, काम करने वाली आई नहीं, बुला ला न !"

"अच्छा, चला !"

"जा भाई ! जल्दी आना। भोजन् तैयार हो गया है।"

गोपाल बरतन माँजने वाली के घर पर गया; पर घर ताला लगा था।

आया तब भोजनालय के बाहर एक आसन पर बैठे राधे बाबू भोजन कर रहे थे।

"क्यों ?" माताजी ने पूछा।

"ताला लगा है उसके यहाँ तो।"

"कहाँ गई ?"

"है हरामज़ादी, वह भटकने गई होगी," रसोई में से मिश्राणी जी बोलीं।

"हाँ भाई, तंग आ गई मैं तो इससे। महीने में दस दिन तो आती ही नहीं। राधे ! तू कोई दूसरी भली काम करने वाली ढूँढ़ दे। इससे काम नहीं चल सकता।"

"बहुत अच्छा ! गोपाल, ढूँढ़ देना भाई !"

"ले, तुझसे कहा तो तूने डाल दिया गोपाल पर। तुझे तो मानो कुछ करना ही नहीं।"

"करना क्यों नहीं ? आज भोजन करके दफ्तर कौन जायगा ? दफ्तर में जाकर वहाँ का काम कौन करेगा ? पीले रजिस्टर में, क्यों गोपाल, कितना मुश्किल…"

"ठीक भाई ठीक, तू तो अपना भोजन कर ले और फिर जा दफ्तर ! गज़ब का काम है तेरे," माता ने कहा।

और यह सुनकर अपने उलूक-सदृश मोटे नेत्रों को इधर-उधर घुमा, गोपाल की ओर देखकर, सहज हँस, दाल में घी डालने को कहा। घी डलते ही बोले—"वाह, वाह ! शाबाश मिश्राणी जी शाबाश ! दाल ऐसी बनी है कि बस !"

भोजन करके जब राधे बाबू कोट पहन, माथे पर साफ़ा बाँध, हाथ में पतली बेंत ले, मुख में पान रख, हुक्के के दो-चार कश खींच दफ्तर के लिए रवाना हुए तब भाभी ने गोपाल से कहा—"बैठ भाई, देर हो गई तुझे।"

गोपाल भोजन करने बैठ गया। माता दूसरे किसी काम के लिए चली गईं। मिश्राणीजी ने थाली परसी। भाभी ने गोपाल के पास उसे रखकर कहा—"ले, खा ले।"

गोपाल खाने लगा।

"कल सारी रात कहाँ

चारों ओर देख, धीमे स्वर में गोपाल ने कहा—"यहीं तो था न ?"

"मुझसे छिपाता है ?"

"भाभी, रात को कहूँगा ।"

"अच्छा !"

इसी समय दरवाजे पर कोई भुनभुनाया ।

"कौन है ?" भाभी ने पूछा ।

गोपाल पानी पी, खादी के चौकोर टुकड़े में बँधी हुई अपनी पुस्तकें लेकर जब घर से बाहर निकलने लगा तब उसने देखा गूँगी चुपचाप खड़ी है और पेट बताकर प्रार्थना कर रही है—"भूख लगी है, कुछ दो न बाई !"

"तत्काल उसे रात्रि की सारी बातें याद आ गईं । काली अंधेरी रात, डोंगी, रुदन, इसी छोकरी को लेकर सेठजी···सांवला रंग, गाल पर काला तिल, भूरी-भूरी आँखें, बिखरे हुए बाल, फटे वस्त्र ! सचमुच सुन्दर लगती थी ! उसकी भूरी-भूरी आँखों की गहराई में कैसी व्यथा भरी थी ?···पर विचार करने का उसे समय नहीं था । वह गली में होकर पाठशाला की तरफ़ चलता बना ।

गूँगी भी एक क्षण स्तब्ध-सी खड़ी रही । तुरन्त ही एक सहज हास्य उसके होठों पर दिखाई दिया, पर उसकी ओर ध्यान दिये बिना ही गोपाल चला गया ।

भाभी ने पूछा—"क्या है ?"

"भूख लगी है," गूँगी ने अपनी भाषा में समझाया ।

"कुछ खाया नहीं ?"

"ना"

"इसी ग्राम की है ?"

"ना"

"दूसरे गाँव से आई है ?"

"हाँ"

भाभी अन्दर गई और माताजी के पास जाकर बोली—

"कोई गरीब गूँगी छोकरी भिक्षा माँगती है।"

"दे न कुछ !"

"खाने को दूँ ?"

"दे न ! पूछती क्या है ? इसमें पूछने का क्या···घर में है तब तक तो देना चाहिए। फिर की बात···"

भाभी रसोई में गई। तीन मोटी रोटियों पर थोड़ा शाक रखा और गूँगी को देकर कहा—"खा ले !"

गूँगी वहीं बैठ गई और खाने लगी।

भाभी खड़ी-खड़ी यह दृश्य देखती रही।

"कितनी भूख लगी है बेचारी को ? दुबले सूखे से हाथों से रोटी तोड़ती है, शाक में इधर-उधर छुआकर मुँह में रखती है। पूरी तरह चबाए बिना ही ग्रास को पेट में उतार लेती है। मानो उसे डर लग रहा है कि कहीं कोई हाथ में आई हुई इस रोटी को छीनकर भाग न जाय।"

जब तीनों रोटियों को वह समाप्त कर चुकी तब उसने ऊपर सिर उठाया। भाभी और उसकी आँखें चार हुईं। बाला की भूरी निर्दोष आँखें देखकर भाभी का मन भर आया। पूछा—"और लेगी ?"

गूँगी ने सिर हिलाया।

दो रोटी और खाकर, अँजुली से पानी पीकर उसका चेहरा प्रफुल्लित हुआ। और अपना माथा जमीन पर टेककर उसने भाभी को प्रणाम किया और कृतज्ञता प्रकट की।

"काम करेगी ?" भाभी ने पूछा।

"आँ····आँ ? अर्थात् क्या काम करना है।

"बरतन माँजना।"

"आँ-आँ !" अर्थात् करूँगी।

"यहीं रहेगी भी ?"

"आँ आऊँगी ।" हाथ का इशारा—हाँ रहूँगी ।

भाभी सास के पास गई । वे भगवान् के लिए कोई वस्त्र सी रही थीं ।

"यह···देखो न माताजी, बरतन माँजने वाली तो···"

"हाँ !"

"तो इस छोकरी को रख लीजिए न !"

"अच्छा बहू ! तुम्हें उचित लगे, वही करो न···पूछती किसलिए हो ?"

और जब गूँगी को कहा गया कि वह इस घर में रह सकेगी; और घर के बरतन साफ़ करने के बदले उसे दोनों समय पेट-भर भोजन मिलेगा और पहनने को कपड़े—तब उसका हृदय आनन्द से भर गया और उसकी आँखों में से हर्ष के दो आँसू गिर पड़े ।

तीन

सेठ कुन्दनमल ग्राम के प्रख्यात महाजन थे । दूर-दूर देशों में उनका व्यापार चलता था । सारे गाँव में उनका नाम था । कोई एक शब्द भी उनके सामने बोलने की शक्ति नहीं रखता था । सोने का उनको ग़ज़ब का शौक । रात को कहो तो दो बजे तक जागते रहें; पर सवेरे दस बजे से पहले उठना वे पाप समझते । सेठानी से इस सम्बन्ध में अनेक बार

तकरार हुई, पर अन्त में उन्हें अपने कुम्भकर्ण पति से हार माननी पड़ी। अब तो दस बजे उठें चाहे बारह बजे, सेठानी जी कुछ नहीं कहतीं।

सवेरे उठते ही उनका नौकर चन्दूमल चौधरी हुक्का भरकर हाज़िर रहता। हुक्के के दो-चार दम खींच, जो सामने खड़ा हो उसी को दो-चार गालियाँ सुना, उनकी शुभ दिनचर्या शुरू होती।

दुर्वासा ऋषि-जैसा उनका क्रोध! बात-बात में भ्रकुटी तन जाती, पैर में से जूता निकल पड़ता और गालियों की बौछार शुरू हो जाती; और इसीलिए ही लोग-बाग उनसे दूर रहने का प्रयत्न करते। आस-पास के किसान उनके नाम से ही काँप उठते। साठ वर्ष के सफेद दाढ़ी वाले सेठ कुन्दनमल से गाँव के बच्चे भी डरते। गूँगी को इस ग्राम में आने के बाद सबसे पहला उपहार सेठ श्री कुन्दनमल का जूता ही मिला था।

खाँस-खखार, हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उन्होंने सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए व्यक्ति से पूछा—

"क्यों बड़े मियाँ? क्यों खड़े हो इस तरह बुद्धू की नाईं?"

"हुज़ूर···"

"क्या हुज़ूर···हुज़ूर···"

"सरकार, सब ठीक है।"

"सब ठीक है? वह नाथू चमार कहाँ मरा है? क्यों हाज़िर नहीं?"

"सरकार, नाथू चमार तो···"

"और वह गोपीचन्द?"

"हुज़ूर···"

सवालों का जवाब सुने बिना ही एक के पीछे एक प्रश्न की परम्परा सुनकर बेचारे बड़े मियाँ घबरा गए।

"अन्नदाता, पर···"

"और···दस मन गेहूँ···"

"अन्नदाता, एक बात," बड़े मियाँ हाथ जोड़कर बोले।

"क्या है, क्या है, कह दे न, बक दे न !"

"हुजूर बड़ के नीचे नाव नहीं है।"

"नाव नहीं है ? क्यों नहीं है ? कहाँ गई है ? कौन ले गया है ?" सेठजी आँखें निकालकर पूछ उठे।

"सरकार, रात को तो बड़ के नीचे बाँधी थी। रात के ग्यारह बजे तक तो वहीं थी। खेत से रात को ११ बजे घर लौटा तब हुजूर, इन आँखों से मैंने देखी थी।"

"तो मियाँ, गई कहाँ ? क्या देखते हो मेरे सामने ?"

"हुजूर··अन्नदाता !"

"हुजूर, अन्नदाता जाय भाड़ में। बड़े मियाँ, तुम तो गधे हो।"

"जी हुज़ूर, जी हुज़ूर," सिर हिलाकर बड़े मियाँ बोले। और कुछ बोलना उनको सूझा ही नहीं।

इतने में बगीची का रक्षक आ पहुँचा और ज़मीन पर माथा टेक, अपना साफा ज़मीन पर ही रख बोला —

"अन्नदाता ! ग़ज़ब की बात हो गई माँ-बाप !"

"है क्या ? सवेरे-सवेरे ही हरामज़ादी···"

"अन्नदाता ! चोरी हो गई।"

"चोरी हो गई··क्या कहा ? चोरी हुई ?" सेठजी ने जूता फेंककर पूछा।

"हाँ अन्नदाता ! बगीची में से केले और पपीतों की चोरी हो गई।"

"ओह ! केले पपीतों की ! हरामख़ोर कहाँ मर गया था ?"

"अन्नदाता, पूछिए मत बात !"

और फिर एक दर्जन बार जमीन पर माथा टेक, हाथों को हिलाते हुए चोरी का जो वर्णन उसने किया उसका सार यह था—'रात को, कल रात के तीन बजे, महादेव के मन्दिर में सो रहा था। एकाएक पैरों की आहट पाकर जाग गया। सफ़ेद-सफ़ेद कोई था। डर लगा भूत

होगा, पर हिम्मत कर पीछे पड़ा। लाठी का प्रहार किया, पर वह तो यह जाय, वह जाय···चम्पत हुआ।

"पर कम्बख़्त, वह था कौन ?"

"कैसे कहा जाय अन्नदाता ?"

"अरे मूर्ख ! उसे आँखों देखा कि नहीं ?"

"हाँ अन्नदाता, इन्हीं आँखों से देखा और लाठी फेंककर···"

"तो फिर पहचान नहीं सका ?"

"यह तो कैसे कहा जाय अन्नदाता !"

"आज से तू नौकरी से बरखास्त···मर यहाँ से।"

"पर अन्नदाता ! मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा ?" कहकर वह रोने लगा।

"बड़े मियाँ !"

"हुज़ूर !"

"किसके ऊपर शक है तुमको ?"

"हुज़ूर !"

बड़े मियाँ विचार करके, दाढ़ी पर हाथ फेर बुद्धि-प्रदर्शन करते हुए बोले—"अन्नदाता !"

"बोलता क्यों नहीं नालायक !"

"रात को ग्यारह बजे तक नाव थी।"

"पर नाव का और चोरी का क्या सम्बन्ध ?"

"अन्नदाता ! है, सम्बन्ध है। रात को जिस व्यक्ति ने चोरी की है; उसी ने नाव भी उड़ाई है। नाव में बैठकर ही यह चोरी होनी चाहिए। क्यों बुद्धन ?" माझी की तरफ़ मुखातिब होकर बड़े मियाँ बोले।

"सच बात है अन्नदाता !"

"क्या सच बात है ?" सेठजी ने पूछा।

इस अनसोची बात से बुद्धन घबरा गया। इस प्रश्न के लिए वह

तैयार नहीं था। एकाएक बोल उठा—

"सच है—सच है अन्नदाता!"

"तो इस नाव में बैठकर ही चोरी की गई है, ऐसा न?"

"बिलाशक, इसमें क्या शक है।" बड़े मियाँ उत्साह में आकर अपनी बुद्धिमानी से अत्यन्त प्रसन्न हो बोलने लगे।

"बिला···शक" मुँह बनाते हुए कुन्दनमल जी ने हुक्के के दो-चार दम खींचकर पूछा—"तो यह चोरी की किसने?"

"यही तो मैं सोच रहा हूँ हुज़ूर!"

"बड़े मियाँ! यह आदमी पकड़ में आना ही चाहिए। नहीं तो···"

"नहीं तो मेरे नाम में बट्टा लगे हुज़ूर! पकड़ न लूँ तो बड़े मियाँ नहीं। हुज़ूर, मेरा तो ख़याल है···"

"क्या खयाल है?"

तभी सेठानीजी के तीव्र कण्ठ-स्वर ने सबके कानों को मथ डाला।

"कुछ खाना-पीना भी है या नहीं?"

"कमला की माँ···अभी बुलाना मत! हाँ बड़े मियाँ···"

"मरो सब," मन्द शब्द बाहर बैठे लोगों के कानों में पड़े।

"हुज़ूर! वह गोपाल सारे गाँव में मशहूर है। गये साल, गरमी में अपनी आमों की बाड़ी में घुस गया था। जब माली पहुँचा तब वृक्ष पर से नदी में कूद पड़ा था और···"

"नालायक! यह गोपाल का काम है? वाह बड़े मियाँ वाह!"

"हुजूर मेरा तो यही खयाल है। क्यों रे बुद्धन, गोपाल था या नहीं?"

"होगा सरकार!"

"क्या होगा सरकार? रात को बगीची में चोरी गोपाल ने ही की या नहीं?"

"हूँ····जी सरकार!"

"जरूर?"

"जी सरकार !"

"बुद्धू !"

"जी सरकार !"

"अरे घबराता किसलिए है बुद्धन भाई !" बड़े मियाँ बोले "रात को तैंने जिस चोर को देखा वह गोपाल जैसा था कि नहीं।"

"था न सरकार।"

"गोपाल जैसा था न ?"

"हाँ सरकार !"

"तो वह गोपाल ही था न ?"

"होगा सरकार—हाँ सरकार—जी सरकार," घबराया वह बोला।

"लीजिए हुजूर, पक्की रही न मेरी बात ? बुला मँगाइए उस हरामखोर को, नहीं तो करवाइए पुलिस में रपट। ऐसे थोड़े ही चलेगा ? मुफ़्त की चीज़ें खाता फिरता है साला हरामखोर, चोर।" इत्यादि विशेषणों से गोपाल को अलंकृत कर बड़े मियाँ अपनी मूँछों पर ताव देने लगे।

सामने से नाथू चमार को आते देखकर बड़े मियाँ बोले—"कहाँ मर गया था रे ?"

और जब उसने जमीन पर माथा टेककर प्रणाम किया तब बड़े मियाँ बोले—"अरे नत्थू ! गये साल तेरी भी तो गोपाल से कहासुनी··"

"हाँ अन्नदाता ! ऐसी तकरार हुई कि······"

"तो फिर कल रात को सेठजी के बगीचे में चोरी उसके सिवाय कौन करे—क्यों ?"

"ज़रूर अन्नदाता ! उसके सिवाय चोरी कौन करे ? ज़रूर उसी ने की है।" फटी हुई पगड़ी की लटकती हुई धज्जियाँ माथे पर खोंसता वह बोला।

सेठजी का आदमी जब राधे बाबू के घर पहुँचा तब गोपाल पाठशाला चला गया था। आदमी वहाँ पहुँचा, तब प्रार्थना हो रही थी।

छठी और सातवीं कक्षा के अन्तिम दर्जे के विद्यार्थी प्रार्थना कराते। गोपाल प्रार्थना के बाद एक गाना गाता था।

प्रार्थना के पश्चात् जब हेडमास्टर साहब से कहा गया कि गोपाल को सेठ कुन्दनमल जी बुला रहे हैं तब तुरन्त ही उसे रवाना कर दिया गया। गोपाल की समझ में सारी बातें आ गई थीं, पर पाठशाला में पढ़ने की बनिस्बत इस प्रकार घूमना उसे अधिक अच्छा लगता था। वह तुरन्त सेठजी के घर आ पहुँचा।

सेठजी की मूर्ति देखकर गोपाल को लगा, आज इनका पारा चढ़ा हुआ है। आते ही सेठजी ने उसका स्वागत गालियों की पुष्पांजलि से किया। गोपाल को क्रोध तो बहुत आया, पर उसने अत्यन्त शान्त-चित्त होकर सब सुन लिया।

"तेरे बाप का बगीचा है?"

गोपाल निरुत्तर।

"तो मरने गया था वहाँ?"

गोपाल चुप।

"साला, हरामखोर, कमज़ात···नाव में बैठकर···"

तब भी वह चुप रहा।

यह मौन देखकर सेठजी का क्रोध भभक उठा।

"नाव में बैठकर चोरी करने गया था कि नहीं?"

तब भी गोपाल मौन रहा।

"अरे, हरामी! बोलता क्यों नहीं? कल रात को नाव छोड़कर··"

"मैं कुछ नहीं जानता।"

"झूठा, झूठा! गये साल भी—साला कलमुँहा, हरामखोर···" और इसके बाद तो सेठजी ने अपना जूता पैर से निकाला। एक क्षण गोपाल यह देखता रहा। दूसरे ही क्षण, जूता उसके ऊपर आए कि इससे पूर्व ही वह कूदा और जिस खाट पर सेठजी बैठे थे उसे लात मार उलट दिया और नौ-दो-ग्यारह हुआ।

पृथ्वी माता को साष्टांग प्रणाम कर, तीन कलाबाज़ी खाकर, खाँसते हुए जब सेठजी खड़े हुए तब नाथू चमार फटे साफे में मुख छिपाकर हँस रहा था और बुद्धन आँखें फाड़कर सेठजी की ऐसी स्थिति किस प्रकार हो सकी, इसका विचार कर रहा था और चौधरी महाशय "हाँ-हाँ···हे शम्भो!" करते सेठजी को पृथ्वी माता की गोद में से उठाकर उनकी खाट पर पुनः बिठलाने का प्रयत्न कर रहे थे।

बड़े मियाँ तो कब के ही यह दृश्य देख चकित होकर, होश भूल, जिस ओर गोपाल दौड़ा उससे विरुद्ध दिशा में उसे पकड़ने दौड़े थे और फिर अपनी भूल को मालूम होते ही 'पकड़ो, पकड़ो, साला चोर, बदमाश' चिल्लाते हुए उसे पकड़ने दौड़े थे। थोड़ी देर में ही पीछे लौटकर बोले—"मालिक, ऐसा जूता मारा कि साला लोहू-लुहान हो गया—बदमाश कहीं का!"

पर सेठजी को इसका उत्तर देने की फुरसत नहीं थी।

"हुजूर, दौड़ता-दौड़ता उसके पीछे गया। गली में से बाजार में दौड़ता हुआ, पण्डित गजानन की गली में होकर पीपल पर चढ़ गया। ज्यों ही मैं पीपल पर चढ़ा कि वह वहीं से नदी में कूद पड़ा···हँ···हँ···"

"जाओ, कोतवाल को बुला लाओ। क्या खड़े हो?"

सेठजी ने हुक्म दिया—"साले को जेल में न भिजवाऊँ तो मेरा नाम नहीं।"

"ज़रूर, ज़रूर, यह चला।" ऐसा कहकर बड़े मियाँ ग्राम के पुलिस इन्स्पेक्टर को बुलाने चले गए।

दूसरा आदमी डाक्टर को बुलाने गया।

थोड़ी ही देर में थानेदार और डाक्टर आ पहुँचे और कुरसियों पर बैठ पूछने लगे—"कहिए, क्या बात है सेठ साहब! आज बेवक्त कैसे याद फ़रमाया?"

सेठ साहब ने काँपते-काँपते क्रोधावेश में सारी हकीकत कह सुनाई और बोले—"साले को फाँसी चढ़ाओ या जन्म-भर कैद भेजो। ग्राम

में इसका काम नहीं।"

"बदमाश है कहाँ?" थानेदार ने पूछा।

"हुजूर नदी में।"

"नदी में?"

"हुजूर मैंने अपनी आँखों से देखा है। पीपल पर से ही नीचे खिसक पड़ा।"

"अच्छा!" थानेदार महाशय बोले, "तो आप ऐसा मानते हैं सेठ साहब, कि नाव में बैठकर ही चोरी की गई है; पर नाव इसी ने छोड़ी और इसी ने चोरी की, इसका सबूत?"

"सबूत? सबूत क्या? मैं कहता हूँ यही।"

"जी, पर प्रमाण बिना…"

"ओ बुद्धन!" सेठजी बोले।

"जी सरकार!"

"चोरी गोपाल ने ही की है न?"

"हाँ सरकार! क्यों न करी होगी सरकार?"

"की है न? तैंने अपनी आँखों देखा है न?"

"हाँ, नहीं तो सरकार! इन दोनों आँखों से देखा है न सरकार! पपीते तोड़ते देखा है सरकार!"

"लीजिए, थानेदार जी! यदि वह चोर नहीं होता तो आप मुझको…" और इसके बाद असह्य पीड़ा होती हो इस तरह अपने दाएँ हाथ को बतलाकर बोले—"देखिए न, हाथ टूट गया है। साला, बदमाश!"

"डाक्टर साहब, देखिए तो हाथ को!"

"जरूर; जरूर" और डाक्टर साहब ने कान पर स्टेथस्कोप चढ़ा, जेब में से थरमामीटर निकाल, सेठजी की छाती देखने की इच्छा प्रकट की, तब सेठजी बोले—"पर डाक्टर साहब, मेरा तो हाथ…"

"आपके हाथ को कुछ हरकत पहुँची हो, ऐसा तो दिखाई नहीं

पड़ता। नुक़सान हुआ हो तो शायद आपके हृदय को···उसे ही देखता हूँ।"

"अबे चौधरी! ये मेरे नौकर भी हरामखोर, गधे के बच्चे, सूअर, अरे देखता क्या है? पान-सुपारी ला न!" फिर मूँछों पर ताव देकर बोले—"डाक्टर साहब! थानेदार साहब! पैसा कितना ही खर्च हो जाय परवाह नहीं, पर इस हरामज़ादे गोपाल को मजा चखाए बिना तो···"

"अच्छा, अच्छा! इसमें चिन्ता क्या? जहाँ हम, डाक्टर साहब तथा अपने ही मजिस्ट्रेट साहब हों, फिर क्या पूछना?" थानेदार आँख मारकर बोले।

जब यह समाचार पण्डित गजानन के कान पड़ा तब वे घर के अन्दर के चबूतरे पर बैठे-बैठे मुख में ज़रदे की फाँकी भर, तम्बाकू खाने में लगे थे। सुनते ही वे विकल हो उठे। गत रात की सारी घटना उनकी आँखों के सामने आ गई। रात के चार बजे बाद, शौच इत्यादि क्रिया से निवृत्त होकर जब वे स्नान करने नदी में उतरे थे, तभी वहाँ सेठजी की नाव आ लगी थी और उसमें था दुष्ट गोपाल तथा वह हरामजादी···चुड़ैल···गूँगी। गोपाल तुरन्त ही वहाँ से चल निकला था। पर वह गूँगी? दुर्बल देह, डर से काँपती! वह उसी में बैठी रही थी। इसके बाद? वे भी ताल में कूद पड़े थे और छोकरी को धमका अपने पास खींच···और···और···वह सारी बात आज सारे गाँव में फैल जायगी। नाव को बाँधे बिना ही वे जल्दी-जल्दी, हाँफते हाँफते घर की तरफ भाग गए थे। नाव बाँध दी होती तो इस बात की किसी को भी खबर नहीं होती। सुना है कि नाव बड़ के नीचे नहीं है। बाँधी नहीं थी, इसी से रात्रि के पवन के वेग से कहीं आगे चल निकली होगी। अथवा गाँव के छोटे बच्चे नदी में स्नान करते-करते नाव पर बैठकर आगे निकल गए होंगे। गोपाल ने ही नाव खोली थी और उसने ही सेठजी के बगीचे में से फल चुराए थे, यह बात तो स्पष्ट ही थी;

पर गोपाल उससे पीछे की बात जो कह देगा तो गाँव में अपना मुँह भी दिखा नहीं सकेंगे। इस गाँव में कितने उनके यजमान हैं। उनकी प्रतिष्ठा, उनका धर्म-कर्म; सब पर यह छोकरा पानी फेर देगा। वे उठे। शरीर पर मोटी खादी की चादर लपेटी, हाथ में लाठी ली और मेंढक की तरह फुदकते सेठ कुन्दनमल की दूकान की ओर बढ़े।

इधर जब भाभी के कान में यह बात पहुँची तब वे भी अत्यन्त चिन्तातुर हो गईं। नदी में कूदकर गोपाल अदृश्य हो गया है, यह सुनकर उनकी आँखों में से आँसू बहने लगे। मिश्राणी जी को भेजकर उन्होंने पति के पास यह समाचार भिजवाया और कहलाया कि जाकर कुछ करें।

जब पंडित गजानन सेठजी के घर पहुँचे तब डाक्टर साहब सेठजी के हाथ में पट्टी बाँधते थे और थानेदार साहब उनके बयान ले रहे थे।

सेठजी को देखते ही, कोई स्वजन मर गया हो, इस प्रकार छाती पीटकर पंडित गजानन रोने लगे—"मर गया रे मेरे बाप! मेरा छोकरा नदी में डूबकर मर गया। ओ माँ! तुमको बैर था तो मुझ बुड्ढे आदमी से लेना था। मेरे बेचारे गोपाल को किसलिए मार डाला रे···ए····ए···"

"है क्या?" सब चकित होकर देखने लगे।

"यह झूठा कलंक किसलिए लगाते हो रे मेरे बाप···तुम्हें दुश्मनी पालनी थी तो मुझ पर पालते। हाय रे मेरे भगवान्··"

"अरे, पर है क्या?"

"होगा क्या? झूठ-मूठ दोष लगा दिया कि चोरी की। मेरा गोपाल तो गरीब गौ-जैसा है रे···चोरी की किसने और नाम लगाया उसका···और वह तो डूबकर मर गया····अब मुझे भी मार डालो। ब्राह्मण के बालक को तो मार डाला अब इस ब्राह्मण को भी ख़तम करो···ओ···" और फिर आँसू पोंछते-पोंछते ज़मीन पर बैठकर पंडित

जी रोने लगे।

"ओ पंडित!" थानेदार बोला, "यह तुम्हारी चालाकी यहाँ नहीं चल सकेगी। किसी दूसरे को मूर्ख बनाना। क्या समझे? छोकरे को तैरना आता है और डूब गया?"

"हाँ···मेरे बाप!···तुम सच्चे और मैं ब्राह्मण झूठा?"

"चुप मर न, चुप मर न!" चौधरी बोला।

इसी समय राधे मोहन बाबू भी दफ़्तर से छुट्टी लेकर वहाँ आ पहुँचे। हँसते-हँसते आँखें इधर-उधर घुमाकर बोले—"हँ···हँ····सेठजी, है क्या बात?"

"बात क्या? बात क्या है? जवाब देना अदालत में। हाँ, हरामखोर, कम्बख़्त मुझे मारकर भाग गया।"

"हो नहीं सकता। मैं मान ही नहीं सकता," राधे बाबू चश्मा चढ़ाकर बोले।

"हाँ हाँ, अदालत मनवाएगी! ऐरों-गैरों को घर में रख रखा है। बड़े दयावान् न देखे हों तो···"

"ए सेठजी! ज़रा मुँह सम्भालकर···" राधे बाबू ज़रा खिजाकर बोले।

"ए? क्या कहा? मुझे दबाना चाहते हो? क्यों? चोरी की चोरी ऊपर से सरजोरी!" एकदम हाथ उठा दुखते हाथ से ही पास पड़ा हुआ जूता···तभी "हाँ हाँ···" करता चौधरी दौड़ा। डाक्टर साहब भी दौड़े और बोले—"सेठजी टूटे हुए हाथ से ही···" और यह याद आते ही सेठजी "हाय दैया री!" कहकर खाट में लुढ़क गए और बोले—"देखा राधे बाबू! हाथ तोड़कर भाग गया तुम्हारा गोपाल।"

"ओ! हाथ सचमुच टूट गया दिखाई देता है," ज़रा हँसकर राधे मोहन बोले।

"अपमान! मेरा अपमान डाक्टर!" खाट में फिर बैठकर सेठजी बोलने लगे।

"अरे अरे सेठजी," चौधरी ने उनको पकड़कर फिर खाट में सुला दिया।

"चोट गम्भीर है," डाक्टर ने राधे मोहन की तरफ घूमकर कहा।

"पर डाक्टर साहब ! आप लोग एक गरीब ब्राह्मण के बालक को···" राधे मोहन बोले।

"मैं भी तो यही कहता हूँ कि गरीब ब्राह्मण बालक की हत्या····" पंडितजी समय मिलते ही उछलकर बोलने लगे।

"चुप रहो !" थानेदार ने हुक्म दिया। और इसके बाद अपना काम निपटाकर कहा—"सेठजी, दो सिपाही उस बदमाश की तलाश में भेजता हूँ। आप निश्चिन्त रहें। और पंडितजी···"

"अरे हम पंडित का कहा मानो, नहीं तो यह ब्राह्मण तुम्हारे दरवाज़े पर ही उपासकर देह पतन करेगा।" और यह कहकर पंडितजी ने अपनी लाठी एक तरफ़ डाल दी और सेठजी के घर के सामने धूल में बैठ गए, और पद्मासन लगा अनशन-व्रत की घोषणा कर दी।

सारे गाँव में यह बात फैल गई कि पंडित गजानन ने सेठजी के दरवाज़े अनशन शुरू कर दिया है। दोपहर के बारह बज गए हैं, सिर पर सूर्य आ गया है; पर ब्राह्मण तो बिना खाए-पिये मरने को बैठा है। राधे मोहन पीछे दफ्तर में चले गए। जाते-जाते आँखें निकालकर कहते गए कि ऐसा अनाचार भगवान् भी नहीं सहेंगे।

भाभी ने कुछ नहीं खाया और अपने कमरे में जाकर सो गई।

नदी में कूदकर गोपाल ने एक डुबकी लगाई और तैरते-तैरते बड़ के पेड़ के नीचे आकर देखा कि नाव नहीं है। उसे अपनी भूल याद आई। रात्रि को गजानन पंडित की कड़ी बातें सुनकर नाव को वहीं छोड़ वह घर की तरफ़ भाग गया था। नाव को बाँधने का ख़याल भी उसे नहीं रहा था। श्मशान, बाँस का वन, इमली का वृक्ष, सेठजी का बगीचा पार करके वह आगे तैरता रहा। कहाँ जा रहा है, इसका उसे ध्यान नहीं। ऐसा सुयोग फिर से मिलने का नहीं।

आज तो पाठशाला से दूर, ग्राम से दूर, निर्जन प्रकृति की गोद में वह जा रहा है। यही मानो उसका युग-युग का जीवन है। इसी में उसे आनन्द मिलता है। अब तो बड़े-बड़े वृक्ष नदी के दोनों किनारों पर दिखाई देते हैं। उनकी सघन छाया नदी के जल में पड़ती है। कितनी अच्छी लगती है! दोपहर के एक या दो बजे होंगे। नदी का जल कल-कल करता बह रहा है। कहीं वह पत्थरों पर होकर कूदता है तो कहीं गम्भीर होकर शान्त दिखाई देता है। कहीं सूर्य की किरणों से चमकता है तो कहीं पानी पर झुक गई डालियों का चुम्बन करता है।

तीन मील दूर, 'बालाजी की टेकरी' की प्रदक्षिणा करती नदी मुड़ती है। टेकरी पर जामुन, इमली और बरगद के सघन वृक्ष हैं। आसपास विशाल वन है और टेकरी पर गणपति की मूर्ति है। टेकरी के पास आकर गोपाल पानी में से बाहर निकला और फुरती से टेकरी पर चढ़ गया। चारों ओर झाड़ियाँ उगी थीं और बड़े वृक्षों की सघन छाया से टेकरी ढकी हुई थी। कितने ही वृक्षों पर से नीचे झुकी पड़ती लताओं के तन्तु किसी साधु की जटा की तरह दिखाई पड़ते थे। ऊपर पहुँचकर एक जामुन के वृक्ष तले बैठ उसने अपने कपड़े उतार डाले और पेड़ पर चढ़कर, एक डाल पर बैठ वन-श्री के दर्शन करने लगा।

पिछले चौबीस घण्टे कैसे विचित्र गुजरे! कल एक बजे नींद खुल गई थी। एक आन्तरिक अभिलाषा ने उसे घर से बाहर धकेल दिया था। अँधेरी रात्रि थी और प्रकृति थी नीरव और निस्तब्ध! बड़ के नीचे आकर वह नाव में बैठा था। श्मशान के पास किसी का रुदन सुना था। इसके बाद वह बाला को बैठाकर सेठजी के बगीचे में जा पहुँचा था।

पीछे लौटती बार बड़ के नीचे आते ही पंडित गजानन से भेंट हो गई थी और वह नाव तथा नाव में बैठी हुई उस छोकरी को छोड़ घर की तरफ़ चल निकला था।

सवेरे स्कूल जाते समय घर के द्वार के पास ही उसी छोकरी से फिर भेंट हुई थी। उस समय का उसका चेहरा उसे याद आने लगा। एका-

एक याद आ गई भाभी। इस प्रकार तो कितनी ही बार वह स्कूल छोड़ कर भाग आया था। गरमी के दिनों में पाठशाला से भागकर आम्र-कुंजों में भटका था; सेठजी के बगीचे में से चोरी करके फल खाए थे; पर आज इस भागने में कुछ विशेषता है। आज भाभी ने भोजन नहीं किया होगा; और यह स्मरण आते ही भाभी की मुखाकृति उसकी आँखों में झिलमिलाने लगी।

कपड़े सूख गए थे। उन्हें पहनकर आसपास देखने लगा। वृक्ष पर गिलहरियाँ इधर-से-उधर दौड़ रही थीं। पक्षियों के बच्चे कलरव कर रहे थे। नीचे गणपति की मूर्ति पर सिन्दूर और तेल चुपड़ा हुआ था। वृक्षों के पत्ते और पुष्पों की वृष्टि से मूर्ति लगभग ढक गई थी। चारों ओर सघन वृक्षावलि थी। क्षों पर से नीचे लटकती अनेक लताएँ एक-दूसरी में उलझी हुई दिखाई पड़ रही थीं। एकाएक गोपाल को राधिका जी के मन्दिर में पढ़ी जाने वाली रामायण की याद आई, हनुमान जी की याद आई। ऐसे ही वन में हनुमान रहते होंगे और वन के फल-मूल खाकर आनन्द में विचरते होंगे। अशोक-वाटिका में सीताजी की ····उसे नींद आने लगी। वृक्ष पर ही डालियों का सहारा लेकर वह सो गया। कितनी देर वह सोया, इसकी भी उसे खबर नहीं हुई; पर जब उसकी आँख खुली तब चारों ओर अन्धकार होने लगा था। उसे लगा, सूर्य डूबने की तैयारी में है; घर भाभी उसकी याद कर रही है। एकाएक उसे घर की याद सताने लगी। वह वृक्ष पर से नीचे कूदा और दौड़ता-दौड़ता, झाड़ियों में से रास्ता करता, टेकरी से नीचे आ पहुँचा।

सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गए थे। सन्ध्या के गहरे रंग आकाश में दीखने लगे थे। ठण्ड पड़ने लगी थी। वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगा। वृक्षों की सघनता को पारकर वह धूल से ढकी हुई कच्ची सड़क पर आ लगा। रास्ते के दोनों ओर अब श्यामल खेत दिखाई देते हैं। किसी-किसी खेत में पोस्त के पुष्पों के वन-के-वन खिले थे—सफेद, लाल और गुलाबी। पवन के वेग से पुष्प इधर-से-उधर नाच रहे हैं;

सन-सन-सन करती वायु बह रही है। प्रकृति का यह कैसा सुन्दर स्वरूप है ? और कल रात्रि का ? भयंकर अँधेरी रात्रि, गहरा नदी का जल, आकाश में झिलमिलाती तारिकाओं का क्षीण-प्रकाश···झिल्लियों की झनकार···साँय-साँय-साँय करती बहती कज्जल-जैसी काली रात्रि !

गायों के झुण्ड-के-झुण्ड घंटा-रव करते पीछे लौट रहे हैं और गो-धूलि से आकाश आच्छादित है। दूसरी ओर भेड़ों का झुण्ड आ रहा है और गड़रिये की आवाज "आ···आ-टर्रर···मर-रे···ए···" दूर-दूर तक सुनाई दे रही है। गाँव के घरों के छप्परों में से निकलता धुआँ सारे गाँव पर छा गया है और अब तो मन्दिरों में आरती शुरू हो गई हो, ऐसा लगता है···हाँ, घण्टा-ध्वनि सुनाई दे रही है। इसी समय मन्दिर में आरती के समय डंका लेकर उसने घण्टे बजाए हैं। लगभग रोज़ रात को राधिका जी के मन्दिर में वह आरती गाता था। पर आज ···आज ऐसे विचार क्यों आते हैं ? वह सोचने लगा।

आगे कौन ? गायों के झुण्ड के आगे दो सिपाही बातें करते उसे मालूम हुए।

"छुन्नू मियाँ ! ग़ज़ब किया पण्डित गजानन ने।"

"हाँ यार ! ब्राह्मण है तो पक्का होशियार।"

"होशियार नहीं तो क्या ? दोपहर के बारह बजे से सेठजी के दरवाजे अनशन करके बैठा है।"

"हाँ, और तैंने सुना ? सेठानीजी ने कहा—शरम नहीं आती शरम !" ब्राह्मण घर के दरवाजे भूखा बैठा है और तुम आनन्द से भोजन करने बैठते हो। यह सुनकर सेठजी क्रोध में भरकर थाली पर से उठ गए और बिना खाए ही सो रहे। दूकान पर भी नहीं गए।"

"अच्छा ? फिर ?"

"फिर क्या ? सेठानी जी ने भी कुछ न खाया और कहा—जब तक ब्राह्मण भूखा दरवाजे पड़ा है तब तक मैं भी पानी की बूँद नहीं छूऊँगी।"

"शाबाश ! शाबाश !"

"फिर तो सेठजी ने थानेदार साहब को बुलाकर केस उठवा लिया और पण्डितजी से कहा—गुरुदेव ! माफ करो। दया करो, मैंने मामला उठा लिया है। अब तो प्रसन्न ! पर ब्राह्मण कहने लगा—मेरा लड़का लौटा दो तब उपवास तोड़ूँ। फिर थानेदार साहब ने आदमी दौड़ाए। ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गए पर मेरा यार छोकरा···"

"फिर पण्डित जी ने उपवास तोड़ा ?"

"नहीं तो ! जब थानेदार ने कहा कि सेठजी, सन्ध्या तक जो गोपाल को हाज़िर न कर दूँ तो मेरा नाम नहीं तब पंडित ने कहा—"अच्छा तो मैं भी माताजी को दुख नहीं दूँगा। जो मिठाई हो सो लाओ, खा लूँ। ज़रूर खाऊँगा। जै हो यजमान की।" और इसके बाद तो पाँच सेर मीठा खा गया। हाँ··"

"हाँ-हाँ, साला ब्हामन है पक्का होशियार। केस-का-केस निकलवा लिया और ऊपर से पाँच सेर मिठाई भी डकार गया।"

"हाँ जनाब ! इसी का नाम तो है ब्हामन। गाँव में गजानन पंडित जैसा होशियार दूसरा नहीं मिलेगा।"

"सच बात है, सच, नहीं तो सेठ-जैसे को बना सकता था क्या ? यह केस चलता तो गोपाल को फाँसी नहीं तो जन्म-कैद जरूर ही मिलती, पर बेटा गज़ब का बच गया। अब बेटा चोरी करने का नाम भूल जायँ नाम।"

गोपाल ने यह सब सुना। सन्ध्या के गहरे होते अन्धकार में सिपाही उसे नहीं देख सके। गायों का दल दूसरे पुल पर से ग्राम की ओर चला गया और उसके साथ ही सिपाही भी चलते बने।

गोपाल सोरती के मैदान में आकर रुका। इसी मार्ग से पूर्ववर्णित सकड़े जर्जर पुल को पार कर, धीरे-धीरे पुल पर होकर, टेकरी पर चढ़कर वह पीपल के वृक्ष के नीचे आया। पंडित गजानन का दरवाजा खुला था। ये पंडित जी थे उसके दूर-दूर के सम्बन्धी ! उनकी कृपा से ही

उसका राधे मोहन के यहाँ रहने का प्रबन्ध हुआ था। पंडित गजानन की स्त्री सती उसे कितना चाहती है? यह पंडितजी की तीसरी बार की पत्नी है। उम्र सत्रह-अठारह वर्ष की है। ग्राम में उस-जैसी रूपवती स्त्री दूसरी कोई नहीं। नहीं, भाभी भी इतनी रूपवती नहीं। उसकी इच्छा हुई, चलूँ, काकी से ही मिल चलूँ। पंडितजी को वह काका जी कहता। पर उनकी पत्नी तो कहतीं—"गोपाल! तू तो मेरे बराबर का है, मुझे काकी कहे सो मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तो क्या कहूँ?" गोपाल पूछता।

"जीजी कह, बहन कह, जो अच्छा लगे सो कह।"

"पर अच्छा लगे क्या? तुम तो मुझसे बड़ी हो।"

"मैं एक वर्ष बड़ी; इससे क्या हुआ?"

"अच्छा तो जीजी कहूँगा।"

"अच्छा।"

इन्हीं विचारों में वह उलझा था तभी तो घर के आँगन में नीम के नीचे बैठी हुई सती की आवाज़ उसके कानों में पड़ी।

"आ भैया! गोपाल आ!" और यह कहकर वह खड़ी हो गई।

गोपाल भीतर आया।

"बैठ, कहाँ था सारा दिन, बतला तो?"

"जीजी!" और वह आगे न बोल सका।

"तेरे सारे पराक्रम मैं जानती हूँ।"

उसने अपनी निगाह नीची कर ली।

"सच कह, कल रात कहाँ था?"

"नदी में।"

"नाव में?"

"हाँ!"

"सारी बातें सच हैं?"

"हाँ!"

"फल भी तैंने ही तोड़े थे ?"

"हाँ !"

"गोपाल ! कल रात तो एक चुड़ैल···"

ये शब्द सुनकर वह चौंका।

"समझा ? उनको चुड़ैल मिली थी।"

"जाओ-जाओ जीजी, बनाओ मत।"

"सचमुच", और फिर हँसते-हँसते कहा—"उन्हें चुड़ैलें ही मिला करती हैं। जिनकी तीन-तीन पत्नियाँ मर चुकीं···ले ले, क्या खायगा ? मैं तो ऐसी ही रही।"

"जीजी ! जाऊँगा, भाभी····"

"हाँ हाँ, जा भैया, भाभी बाट देखती होंगी।"

इसी समय पंडित गजानन डकारें लेते हुए घर में दाखिल हुए। "कौन ? गोपाल ? शम्भो ! शम्भो !! कहाँ मर गया था रे ?"

गोपाल ने उत्तर नहीं दिया।

"छोकरे ! तू तो किसी दिन हम लोगों का खून करावेगा। वह तो ठीक बचा लिया नहीं तो····जा, जाता है, जा अब लम्बा हो जा···" और फिर जब गोपाल घर से बाहर आया तब खुद भी पीछे-पीछे आए और बोले—"यदि किसी के सामने कल वाली बात मुँह से निकाली कि बस मरा ही समझना। समझा ?"

गोपाल जवाब दिये बिना ही चलता बना। गली पार कर, राधिका जी के मन्दिर के सामने हो जब वह घर के द्वार पर आया तब गली में गूँगी खड़ी थी। गोपाल को आता हुआ देखकर आनन्द में मतवाली होकर वह भीतर दौड़ी गई और अपनी मौन भाषा में "आँ···आँ" करती कहने लगी कि गोपाल आ गया है।

भाभी बैठी थीं। वहाँ से दौड़ीं और गोपाल को देख कृत्रिम क्रोध करके बोल उठीं—"वाह रे वाह ! अब मैं तुझसे बोलने वाली नहीं।"

भाभी की चरण-रज माथे लगा गोपाल बोला—"क्षमा करो

भाभी !"

"माफ करो, कह दिया—चल, हाथ-पैर धोकर बैठ भोजन के लिए।"

भोजन करते-करते गोपाल गूँगी को इस घर में देखकर आश्चर्य करने लगा। सवेरे की गन्दी, फटे कपड़ों वाली गूँगी कहाँ और स्नानादि से स्वच्छ बनी हुई, भाभी के पुराने कपड़ों में सज्ज यह गूँगी कहाँ? और यह यहाँ कहाँ से आई? फिर उसे लगा कि ठीक है, ठीक है, भाभी ने ही इसे रख लिया होगा।

भाभी दीपक के क्षीण प्रकाश में भी उसके मुख के भावों को समझ कर बोलीं—

"गोपाल! नई लगती है न यह? अपनी काम वाली को तो तू जानता है न···इसलिए इसको यहीं··"

"हाँ भाभी! मैं तो समझ गया था।"

रात को सोते समय भाभी ने पूछा—"गोपाल! ये सब बातें सच हैं?"

"क्या भाभी?"

"तू कल रात नाव लेकर····"

"हाँ भाभी!"

"एक वचन देगा?"

"क्या भाभी?"

"किसी दिन मुझको पूछे बिना ऐसा काम नहीं करेगा।"

"नहीं करूँगा।"

"जा, सो जा।"

पर जाते समय उसे लगा उसने भाभी को धोखा दिया है। कोई बात किसी दिन उसने भाभी के सामने छिपाई नहीं थी। आज उस रात की सारी बातें क्यों न उसने कहीं? किस भाव से प्रेरित होकर उसने उस छोकरी को नाव में लिया था। उसको फल खिलाए थे? किसलिए वह उसको अकेली छोड़कर घर चला आया था? क्यों उसने

भाभी को रात की सारी बातें न बता दीं ?

पर इन प्रश्नों का उत्तर वह दे नहीं सका। चुपचाप अपने बिछौने र पड़ा रहा। पास की ही कोठरी में खाट पर पड़े हुए, खर्राटे लेते ाधे बाबू सो रहे थे। घर के छप्पर में से झींगुरों की झंकार आ रही थी। रात आगे बढ़ रही थी, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। बारम्बार नाव में बैठी हुई वह छोकरी याद आ जाती थी।

चार

र्र-घर्र-घर्र चक्की चलती और गूँगी "आँ···आँ" करती अपनी ही आवाज़ में कुछ गाने का प्रयत्न कर रही थी। जब से वह इस घर में आई है तब से ही मानो उसका जीवन बदल गया है। सवेरे जल्दी उठकर चक्की पीसती, बरतन घिसती, झाड़ू लगाती, दोपहर को चरखा कातती, साँझ होते ही सबके बिछौने करती। ये सब काम करती वह आनन्द से यहाँ रहती है। उसकी क्षीण और दुर्बल देह दिन-दिन पुष्ट होती जाती है और सबको आश्चर्य में डालती है। गूँगी सचमुच भाग्यशालिनी है। इतने थोड़े दिनों में ही मानो उसका जीवन बदल गया है। गालों पर लाली और सम्पूर्ण शरीर में यौवन का संचार हो रहा है। बाएँ गाल पर का काला तिल और उसकी भूरी आँखें उसके सौन्दर्य में मानो अभिवृद्धि कर रहे हैं।

घर्र-घर्र-घर्र चक्की चल रही है और गूँगी अपने परिवर्तित जीवन पर विचार कर रही है। इस गाँव में आना, रात के समय नाव में

घूमना, अचानक जिस घर में गोपाल रहता था, वहीं आ पहुँचना और संयोग से वहीं उसका भी निवास हो जाना—ये सब आश्चर्यजनक घटनाएँ थीं।

पर गोपाल, उस रात के और दूसरे दिन की घटना के बाद उसका जीवन पलट गया है। बाड़ियों में लूट मचाने का कार्य उसने छोड़ दिया है। भाभी ने कहा था, गोपाल! मेरा कहना नहीं मानेगा? अब से यह सब छोड़ना पड़ेगा।" और तब से गोपाल ने सुशील छोकरे की तरह भाभी का कहना मानना शुरू कर दिया था। वह अब पाठशाला में नियमित रूप से जाता है। छठी कक्षा में पढ़ाई भी अधिक होती है और इसी से वह रात में भी देर तक पढ़ता है।

गोपाल गूँगी से अधिक नहीं बोलता। उसको अपने ही काम से अवकाश नहीं मिलता और इससे वह चुपचाप अपना काम करता रहता है, पर गूँगी को गोपाल का यह व्यवहार भाता नहीं। जिस युवक ने नौका में बिठाकर उस रात उसे सैर कराई थी और उसकी भूख मिटाई थी, वही युवक आज एक घर में साथ रहता हुआ भी उससे दूर-दूर रहता है; ऐसा व्यवहार क्यों?

घर्र-घर्र-घर्र चक्की की आवाज़ हो रही है और उसका मन विचारों में बह रहा है। उस दिन की बातें उसे याद आ रही हैं। रात के दस बजे थे। गोपाल दूसरे घर में, छोटे-से दीपक के प्रकाश में पढ़ रहा था। राधे बाबू भोजन करने के बाद, हुक्का गुड़गुड़ा सो गए थे। घर के सारे आदमी सोने की तैयारी कर रहे थे। मिश्राणीजी, कबरी बिल्ली को मार कर अभी ही अपनी खटोली पर पड़ी थीं और बड़बड़ा रही थीं—"यह हरामजादी बिल्ली—मरती भी तो नहीं।" और भाभी ने कहा था—

"चन्दा!" भाभी ने गूँगी का नाम चन्दा रक्खा था। वे उसको चन्दी या चन्दा कहकर ही बुलाती थीं।

जब गूँगी बरतन धोकर सामने आई तब भाभी ने कहा—"जा, यह दूध का प्याला गोपाल को दे आ।"

दूध का प्याला ले जब चन्दा-गूँगी सामने के घर में आई तब राधे बाबू के गम्भीर खर्राटे सुनाई पड़ रहे थे और बाएँ बाजू के कमरे में से दीपक का मन्द प्रकाश आँगन में पड़ रहा था। गूँगी अन्दर गई।

एक खोखे पर बैठा गोपाल कुछ लिख रहा था। सामने एक दूसरा खोखा पड़ा था। जिस खोखे पर वह बैठा करता वही उसकी कुरसी था और सामने वाला उसकी मेज थी। खोखे पर थोड़ी-सी पुस्तकें पड़ी थीं। कितनी ही पुस्तकें खोखे के भीतर भी पड़ी थीं। गोपाल की दाहिनी ओर एक छोटी-सी खिड़की थी; पर उसमें से प्रकाश अन्दर आता था या अन्धकार यह कहना अत्यन्त कठिन था। दीवार की ओर कोठरी अँधेरी ही रहती थी। नीचे की ज़मीन मिट्टी से लिपी थी। रोज़ दोपहर को जब गोपाल पाठशाला गया होता, चन्दा इस कोठरी में आकर उसकी पुस्तकें ठीक कर देती। इससे पहले भाभी यह काम करती थी, पर अब तो यह काम चन्दा ने अपने सिर ले लिया था।

जब वह भीतर गई तब गोपाल लिखने में इतना तल्लीन था कि उसे पता नहीं चला कि कौन अन्दर आया है।

चन्दा उसके खोखे के पास आई, पर गोपाल का ध्यान नहीं टूटा।

"ओ···ओं···" अपनी गूँगी भाषा में वह बोली।

उसने देखा। सामने खड़ी है चन्दा—पहले की गूँगी। हाथ में दूध का प्याला है।

"रख दे!" कहकर गोपाल अपने काम में लग गया। चन्दा हाथ में प्याला लेकर खड़ी रही। गोपाल अपना काम करता रहा। आधे घण्टे बाद जब उसने आँखें ऊपर कीं तो उसने देखा हाथ में प्याला लिये चन्दा वहीं खड़ी है। उसे आश्चर्य हुआ।

फिर से उसने प्याला रख देने को कहा।

चन्दा के हृदय को इससे आघात लगना स्वाभाविक था। प्याला टेबल पर धब से रखकर वह वहाँ से चल दी और बिस्तर में आकर लेट गई, पर किसी प्रकार उसे नींद नहीं आई। उसके हृदय में एक

व्यथा। थी क्यों, वह यह समझने में असमर्थ थी। एकाएक उसकी आँखों के सामने पंडित गजानन की मूर्ति आई और रात में चार बजे बाद की घटना! नाव में पंडितजी आ कूदे थे···उस समय का स्मरण आते ही उसका हृदय मानो हिल उठा। वह विचारों को दबाने के लिए इधर से उधर बिस्तर में करवटें बदलती और गोपाल का सुन्दर मुख अपनी आँखों के सामने लाकर सो जाने का प्रयत्न करती रही। पर आज उसे नींद नहीं आती। जाड़े के दिन थे। सख्त सरदी पड़ रही थी। फटी हुई पुरानी गुदड़ी में लिपटी वह पड़ी थी। पर न जाने क्यों उसे नींद नहीं आ रही थी।

वह उठी और गोपाल के कमरे में आकर उसने देखा दूध का प्याला अब भी ज्यों-का-त्यों रखा है और गोपाल कुछ लिखने में प्रवृत्त है। गोपाल को याद दिलाने की हिम्मत उसे न हुई। बहुत देर तक वह वहीं खड़ी रही और फिर वहीं ज़मीन पर लेट गई। न जाने क्यों ज़मीन पर पड़ते ही उसे नींद आ गई। उसे लगा मानो वह किसी बड़े राक्षस के पंजे से मुक्त होकर अपने प्रियजन के चरणों में लेट गई है। वह सोचने लगी क्यों ऐसे भाव उसके हृदय में उमड़ रहे हैं? पर वह क्या करे? वह विवश थी। और फिर कड़ाके की सरदी होते हुए और शीत से काँपते हुए भी वह गोपाल के चरणों के पास प्रगाढ़ निद्रा में डूब गई।

गोपाल अपने काम में मस्त था। चन्दा कब आई, यह उसे पता नहीं था। जब उसकी तन्द्रा टूटी और वह पानी पीने उठा तब तुरन्त ही सबसे पहली दृष्टि पड़ी दूध के प्याले पर और फिर उसके खोले के पास ही ज़मीन पर सोई हुई उस छोकरी पर। यह क्या? क्यों चन्दा यहाँ पड़ी है? उसे अपने हाथ से उठाकर बोला—

"छिः, क्या यह सोने का स्थान है?"

घबराई हुई चन्दा इधर-उधर देखने लगी। उसकी दृष्टि गोपाल के क्रोध से भरे चेहरे पर पड़ी।

"जा ! सो जा !! रात के समय यहाँ क्या करती है ?"

और फिर पानी पी गोपाल आँगन में घूमने लगा। चन्दा वहाँ से ठकर सामने के घर में चली गई और दरवाजे की साँकल लगा, अपने बेछौने में आ पड़ी। उसके हृदय के किसी ने सौ-सौ टुकड़े कर दिये ों, ऐसा उसे मालूम होने लगा और फिर अपनी फटी हुई गन्दी गुदड़ी ं मुँह छिपाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

र्र···घर्र···घर्र, चक्की की घरघराहट ! और साथ-साथ न जाने क्यों न्दा की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे हैं।

उसको अपने गत जीवन का ख़याल आने लगा···वन में और वन े बाहर, गाँव की सीमा पर और खेतों में···बनजारों का झुण्ड चलता। ाधे पर मानो उसका घर चलता···जब वह बिलकुल बालिका थी। उस मय का अस्पष्ट स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने आने लगीं। ग्राम े बाहर, बरगद की सघन छाया के नीचे उनका दल पड़ा था। बीच में लाव जलता था। आसपास फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे हुए स्त्री और पुरुष पड़े थे। एकाएक आपस में झगड़ा हो गया। मार-पीट होने लगी और उसके पिता के सिर में लाठी की चोट लगी। वह मूर्च्छित ोकर भूमि पर गिर गया। सवेरा होने पर जब उसे चेत हुआ तब पत्नी ो कहा—"चल, तैयार हो जा। गधे पर सामान लाद। अभी, इसी मय यहाँ से चल देना चाहिए। इन लोगों के साथ अब मुझे नहीं हना।"

वह सो रही थी। माँ ने उसे जगाया। आँखें मलकर देखा तो वही बड़ा बरगद का पेड़ था। उनके साथी सब सो रहे थे। माँ-बाप के साथ वह चल निकली। दिन चढ़ते-चढ़ते गाँव छोड़कर एक दूर जंगल में जा पहुँचे थे। वह सवेरा आज उसे बार-बार याद आता था जिस दिन उसकी माँ ने रोटी का सूखा टुकड़ा दिया था।

पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, त्यों-त्यों भोजन-सामग्री चुकती

गई।···विचारधारा आगे बढ़ी। उस दिन कुछ भी खाने को न था। बाला को चार दिन से उपवास करना पड़ा था। माँ ने भी कुछ नहीं खाया था। उसकी भूख किसी प्रकार भी मिटती न थी।

उस रात वह सोने का प्रयास करती रही थी। रात के १२ बजे होंगे। एक जंगल में वृक्ष के नीचे वे पड़े थे। दो दिन पहले गधा भी मर गया था। माँ और पिता में कुछ झगड़ा हो रहा हो, ऐसा उसे लगा।

बाप कह रहा था—"जा, उस साहब के पास जा और कुछ ले आ।"

"नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।"

"क्यों नहीं होगा? यों ही भूख से मर जावेंगे, यह देखती नहीं?"

"पर मैं ऐसा नहीं कर सकती।"

"तो पहले कैसे हुआ?"

"एक बार जवानी में भूल हुई। पर अब मैं नहीं करूँगी।"

"तो यह छोकरी किसलिए पैदा की थी?"

"उस समय जवान थी; भूख से पीड़ित थी। इतने में तुम मिल गए और तुम्हारे साथ चल निकली। अब ऐसा काम मुझसे नहीं होगा।"

"नहीं होगा! देखो नहीं होती तो···बड़ी सती बनती है। जा, कहता हूँ, नहीं तो ख़ैर नहीं है।"

"नहीं, मुझसे नहीं होगा।"

"नहीं होगा?"

"नहीं।"

"याद रखना तेरे उस ख़सम का ख़ून न करूँ तो मेरा नाम नहीं।"

"नहीं-नहीं, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। ऐसा कभी मत करना···" ऐसा कहकर माँ मेरे बाप के पैरों में गिर पड़ी थी।

"मर-मर राँड़!" ऐसा कहकर माता को लात लगा वह चल निकला था और अदृश्य हो गया था।

इसके बाद उसका क्या हुआ? पिता का विकराल चेहरा उसकी

आँखों के सम्मुख नाचने लगा, पर इससे पहले तो किसी दिन ऐसा नहीं हुआ था।

…दुःख के दिन। गाँव-गाँव, खेत-खेत, जंगल-जंगल भटकना, ये सब अस्पष्ट स्मृतियाँ थीं…खाने को कभी मिलता, कभी नहीं। माता के दुख में दुखी और सुख में सुखी वह रहने लगी।

बहुत दुख पड़ता तब माता उसे अपनी छाती से चिपका चुम्बनों से उसका मुँह भर देती और फिर रोती-रोती कहती—"मैं ही दोषी हूँ, मैं ही दोषी हूँ।…" फिर खूब रोती।

…वर्ष बीत गए—सालों गुज़र गए…वह सयानी हुई। उसको अपने शरीर का ज्ञान हुआ। वह अब बालिका नहीं थी—वह थी अब किशोरी—यौवन में प्रवेश कर चुकी थी। अपनी सुन्दरता देख उसे आश्चर्य होता…

भीख माँगने माता के साथ जाती तब गाँव के लोग उसकी तरफ़ टुकुर-टुकुर देखा करते। पहले तो उसने समझा—मुए ये लोग क्या देखा करते हैं? एक दिन उसे खबर हुई उसके उभरे हुए वक्षस्थल पर लोगों की बुभुक्षित दृष्टि पड़ती है। मुए लोग क्या देखते हैं; क्या खा जाना चाहते हैं?"

पर किसी ने उसके पास आने की धृष्टता नहीं की थी। उसे पैसे मिलते—खाने को मिलता। माँ वृद्धा-जैसी जर्जर हो गई थी। भीख माँगकर इधर-से-उधर भटककर मानो वह परेशान हो गई थी, पर अपनी पुत्री के लिए ही मानो वह जीवित थी।

एक गाँव था। माता मरने को बैठी थी। गाँव के बाहर पीपल के नीचे वह अन्तिम श्वासें ले रही थी। वह अब बचेगी नहीं, ऐसा उसे अनुभव हो रहा था। उसका हृदय ऐसा विमूढ़ हो गया था कि उसे कुछ सूझता नहीं था। माँ के फीके—निस्तेज चेहरे के पास अपना मुँह ले जाकर वह बोली—"माँ!"

वात्सल्य से भरपूर माता ने उसके माथे पर हाथ फेरा और बोली—

"पानी···"

उसकी इच्छा हुई, कहीं से दूध लाकर माँ के मुख में डालूँ। वह उठी। सन्ध्या होने लगी थी। मार्ग में एक मोटे सेठजी मिले। वह बोली—

"बापू! एक दो आना···"

"ओह!" छोकरी का सौन्दर्य देख सेठजी बोले।

"मेरी माँ मरने बैठी है···बापू···दूध के लिए···"

"ओह! दूध···दूध···पिलायगी दूध···" और ऐसी दृष्टि, ऐसी लालसा-भरी दृष्टि उसने किसी दिन नहीं देखी थी। सेठ ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा।

उसने ज़रा भी आनाकानी नहीं की···मानो यह शरीर उसका ही नहीं है। उस पर उसका तनिक भी मोह नहीं है, ऐसा उसके मन ने मानो जाहिर किया। सेठ ने उसका मुँह चूम लिया और दो आने उसके हाथ में रख दिये।

वह चली। चलते-चलते विचारती थी। उसे अपने शरीर का कुछ भी खयाल नहीं। शरीर पर तो अनेक अत्याचार हो चुके हैं। गरमी-ठण्ड, भूख-प्यास, धूप और सरदी—ये सब उसने सहन किये हैं···यह भी सहन करना इस खोटे नसीब में लिखा था। वह बोली—उसके हृदय में लज्जा-शर्म ज़रा नहीं है। दो आने का दूध लेकर वह पीपल के नीचे आई तब तक माँ का जीवन-दीप बुझ चुका था···सूर्य की अन्तिम किरण के साथ मानो माता के जीवन की आख़िरी किरण भी अस्त हो गई थी। वह माता के मृत देह पर गिर पड़ी। उसका हृदय फटने को हुआ, पर फटा नहीं।

उसे कुछ नहीं सूझा···पागल की भाँति वहाँ से चल निकली। दौड़ती-दौड़ती उस गाँव को छोड़ दूसरे गाँव में आई, रास्ते में ठोकर लगते ही मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

दूसरे दिन दोपहर के बारह बजे उसे होश हुआ। फिर वह तेज़ी

से दौड़ने लगी···एक गाँव आया उसे छोड़ा—आगे बढ़ी। रात के ग्यारह बजते-बजते वह उस उजाड़ नदी के टूटे पुल पर आ पहुँची। इसके बाद ?

···ये सब विचार, सारी कथा, हृदय में आग लगा रहे थे। इन्हें वह किससे कहे ? कैसे कहे ? विधाता ने तो उसे गूँगी बनाया है।

और यह विचार आते ही उसकी आँखों से आँसू की झड़ी लगकर पिसे हुए आटे में गिरने लगी। इसके बाद चक्की की आवाज़ धीमी होने लगी और वह चक्की पर ही ढल गई !

पाँच

सवेरे के पाँच बजे नियमानुसार गोपाल जागा, पर आज उसे चक्की की घर्र-घर्र ध्वनि नहीं सुनाई दी और न सुनाई दिया गूँगी के कंठ से निकलता हुआ विचित्र 'अँ···अँ···अँ' का स्वर। रोज़ सवेरे इसी समय जब वह उठता था तब चक्की की वह परिचित आवाज़ उसे सुनाई पड़ती थी और बहुत देर तक तो जब नींद बिलकुल उड़ जाती तब तक वह बिस्तर में पड़ा-पड़ा चक्की की 'घर्र-घर्र-घर्र' आवाज़ सुनता रहता था। आज उसे देर हो गई क्या ? कोठरी में से बाहर आकर, आकाश की ओर दृष्टि डाली। रोज़ का ही समय है, पर चक्की की आवाज़ नहीं।

नदी पर नहाने जाना है। गरमी हो या सरदी, नदी में नहाना वह नहीं छोड़ता। आँगन में होकर भीतर बरामदे में आया। देखा दीपक धीमे-धीमे जल रहा है और चक्की पर ही गूँगी ढुलक गई है। वह

पास गया। उसके गालों पर आँसू की बूँदें ढुलककर सूख गई हैं। एकाएक थोड़े दिन पहले की रात्रि की घटना याद आते ही उसके हृदय में करुणा जाग उठी।

गोपाल ने उसका हाथ पकड़ जगाते हुए कहा—"चन्दा-चन्दा !" पर ओह ! हाथ तो तवे की तरह जल रहा है। बुखार हो गया है ? एकाएक चन्दा जागी। "ओह !" वह बोली। "तुझे बुखार आ गया मालूम होता है। सो जा," गोपाल ने कहा।

मानो गोपाल के शब्द उसने सुने न हों, इस प्रकार वह उठकर फिर चक्की चलाने लगी। गोपाल नहाने को नदी की ओर चल दिया।

राधिकाजी के मन्दिर के सामने हो, दाईं ओर की गली में निकल, पीपल के नीचे होकर वह नीचे उतरने लगा। उसी समय सामने ही पंडित गजानन नदी में से स्नान कर आ रहे थे और मन्त्रोच्चारण कर रहे थे—"कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्" और फिर "शम्भो-शम्भो···क्षमा करना मेरे स्वामी।"

गोपाल को देखकर बोले—"ओह गोपाल ! आज क्यों देर से ?"

"यों ही देर हो गई," कहकर वह पुल पर आ गया। फिर नदी के किनारे-किनारे चलकर, कुछ दूर जा, एक वृक्ष पर चढ़कर वहाँ से ही नदी में कूद पड़ा। किसी दिन नहीं, पर आज उसे नदी का पानी ठंडा लगा। किसलिए ? कारण ? क्या इतने दिनों में वह निर्बल हो गया है ? उसका आज दिन तक का स्वतन्त्र जीवन और अभी-अभी का बँधा हुआ नियमित जीवन—भाभी के वचनों से प्रेरित किया हुआ—इन दोनों में कितना अन्तर है ? यही कारण है कि उसे आज ठंड लगी। एकाएक विचार आया—यह बन्धन, भले ही प्रेम का हो, वह नहीं स्वीकार कर सकेगा। प्रकृति उसकी माता है। उसी में वह मस्त रहेगा। बाह्य बन्धनों में वह नहीं बँधेगा। फिर से कहीं भाग निकलने की, आसपास के इन बन्धनों को तोड़कर कहीं स्वतन्त्रता से विचरने की, उसकी लालसा जाग उठी। थोड़ी ही दूर वह नाव है। नदी का जल

धीमा, गहरा और गम्भीर है। जाओ, दूर-दूर निकल जाऊँ, जहाँ मनुष्यों की कोई बस्ती न हो, जहाँ वही अकेला हो और आसपास हो प्रकृति का साम्राज्य—विशाल वन-राशि—घना निबड़—अन्धेरा वन ! किसलिए यह लालसा उत्पन्न होती है ? क्या है ऐसा इस प्रकृति में जो इस प्रकार खींच रहा है···पर नहीं, भाभी के वचन–भाभी का स्नेह··· उस स्नेह को तो वह किसी प्रकार नहीं भूल सकता।

आज से दो वर्ष पहले वह बीमार हो गया था तब उसकी सेवा किसने की थी ? माता की भाँति, भगिनी की तरह उसकी सेवा-शुश्रूषा किसने की थी ? किसने आँखों का अमूल्य जल बहा-बहाकर उसे स्वस्थ किया था ? तो फिर वह क्यों—किसलिए ऐसा करे ? किसलिए इस तरह स्वच्छन्द विहार करने की इच्छा करे ?

स्नान करके, गम्भीर वदन हो वह घर आया। आया तब उसने देखा, भाभी ज़ोर से पुकारकर चन्दा को जगा रही है—उठ न, कितना सोना है ? कितना आटा बाकी है ? यह क्या ? यह सोने की रीति है क्या ?”

और फिर उसके कानों में शब्द पड़े—“ओ माँ ! इसको तो ज्वर हो गया है।”

“अच्छा, सो जा। बुख़ार आ गया तुझे तो।”

जब वह जागी तब उसकी आँखों में विषाद था। लड़खड़ाती वह उठी और वहीं पड़ी चटाई पर लेट गई।

“गोपाल !”

“हाँ, भाभी !”

“जा भाई, इसकी गुदड़ी लाकर उढ़ा दे।”

गोपाल ने उसकी फटी गुदड़ी जब उसको उढ़ाई तब चन्दा ने अपनी आँखें खोलकर एक विचित्र स्नेह-भरी, दया-भरी दृष्टि से गोपाल को देखा और फिर आँखें बन्द करके सो गई।

गोपाल अपने काम को जाने लगा तब भाभी ने पुकारा—

"गोपाल !"

"जी !"

"इस लड़की को तो बुखार हो गया है। कल एकादशी है न ? माँजी को उपवास है और सत्यनारायण की कथा करवानी है। पंडितजी के घर तुझे ही जाना पड़ेगा।"

"अच्छा !"

"तो हो आ न !"

"जी ! जाता हूँ।"

"कहना कि ज़रा चक्कर लगा जायँ इधर।"

"अच्छा।"

"कहना माँजी को ज़रा काम है, सो इधर होते जायँ।"

"अच्छा।"

गोपाल ने अपनी कोठरी में जा लँगोट पहना और एक फटी-सी चटाई पर बैठकर गायत्री-मन्त्र जपने लगा।

दो-तीन बार बाबू राधेमोहन को पत्नी ने जगाया, पर उनकी निद्रा किसी प्रकार भंग न हुई। जब पत्नी उठाती तब उनकी नासिका का स्वर बन्द होता और वे कहते—"ओह ! यह उठा···" और ज्यों ही पत्नी जाती त्यों ही फिर सो जाते और उनकी नासिका फिर गतिमान हो जाती।

माता ने पुकारा—"बहू !"

"जी !"

"राधे उठा ?"

बहू शान्त खड़ी रही।

"अभी तक नहीं उठा ?"

बहू फिर भी शान्त थी।

"जा-जा, फिर से जगा आ। कहाँ तक सोना है ? कल मेरे कथा है। बाज़ार से चीज़ें भी ख़रीदकर लानी हैं।"

"आप ही जाइये न माता जी···मुझ से···"

माता पुत्र को जगाने जब दूसरे घर में आईं तब भीतर की कोठरी में गोपाल ज़ोर-ज़ोर से कुछ गा रहा था और राधे बाबू की नासिका का स्वर मानो ताल दे रहा था।

"राधे! ओ राधे!!"

"हाँ!" उल्लू की-सी आँखें फाड़, माताजी को सामने देख, एकाएक पलंग पर बैठकर, अँगड़ाई ले बोले—"साला गोपाल भी ग़ज़ब का बदमाश है। कितनी बार कहता हूँ कि मुझे जगा देना, मुझको जगा देना, पर उसे रागनियाँ तानने से ही···"

"अच्छा, अच्छा। उठ बेटा, बाज़ार से···"

"हाँ हाँ! यह उठा न···यह दातुन किया, मुँह धोया···और··· चाय भेजो माँ!···और आज मिश्राणीजी ने कचौरी करी होंगी न···रात को भूख नहीं थी, इससे···इस समय ज़रा भूख····"

"हाँ-हाँ! तू जरा जल्दी से निवृत्त हो जा।"

"अच्छा, अच्छा" करते राधे बाबू उठे। हाथ-मुँह धो दो लोटे पानी से नहाने की क्रिया निपटे और सूर्य के प्रकाश में बहुत सुन्दर दीखते अपने पट्टे पर आ विराजे। चाय और एक तश्तरी में दर्जन के करीब कचौरी देखकर उनके मुँह में पानी आ गया।

खाने लगे, तभी माताजी आईं।

"गोपाल!"

"जी!"

"जाता है न?"

"जी, यह चला।"

"अरे गोपाल!" राधे बाबू बोले—"मिश्राणीजी से कह कि कचौरी जरा कुरकुरी तलें। ऐसी कच्ची कचौरी पेट में डालकर मुझे पेट नहीं दुखाना। क्या समझा? जरा गरमागरम कचौरी भेज तो—क्या समझा?"

"जी"

"जी और जी ! जल्दी कर न ! फिर मुझे बाज़ार जाना है, यह ख़बर नहीं है क्या ? जी-जी करता खड़ा है तू ।"

"यह चला," हँसता-हँसता गोपाल दूसरे घर में आया और बोला, "मिश्राणीजी तुम्हारी कचौरियाँ परीक्षा में फ़ेल रही हैं। तलना तुम्हें आता ही नहीं। कच्ची ! दो-चार दर्ज़न कचौरी और ठीक-ठीक तलकर भाई साहब के लिए भेजो न ?"

"ओ माँ ! कितना खाना है," भाभी बोलीं, "नाश्ते में इतनी कचौरी खाएँगे तो भोजन क्या करेंगे ?"

"भाभीजी ! इसकी फ़िकर मत करिये। भोजन के समय कमी नहीं आवेगी," हँसते-हँसते गोपाल बोला और चलता बना।

ग्राम में गूँगी के सम्बन्ध में अनेक बातें होने लगीं। कोई कहता, वह बनजारों के साथ फिरती थी जरूर, पर वह बनजारों की सन्तान नहीं थी। ऊँचे वर्ण के बाप की छोकरी हो, ऐसा लगता था। राधिका जी के मन्दिर का पुजारी दुलारेलाल चौबे कहता—"छिः, तुम क्या जानो ? यह सब मैं जानता हूँ।" और फिर अत्यन्त मन्द स्वर में श्रोताओं के कान के पास अपना मुख ले जाकर, अत्यन्त गुप्त बात कहता हो, ऐसा डौल करके कहता—"ये····समझे न···हाँ···उस साब की···उनकी छोकरी···हाँ···मैं जानता हूं। शिकार करने बन में आये थे। वन में देखी एक अप्सरा जैसी लड़की। ले भागे। फिर पूछना क्या ? हाँ···राधिकाजी की सौगन्ध ! झूँठ बोलता हूं क्या ?"

और फिर भाँग का लोटा अपने मुँह में उँडेलकर बोलता—

"जय विजया ! जय विजया !! और देखना यह बात किसी से कहना नहीं—क्या समझे ?"

जब गूँगी गाँव में किसी भी काम को जाती, तब लोग उसे निर्निमेष दृष्टि से देखते रहते। लोगों को होता, यह भी हल्के वर्ण की, पर कैसी भाग्यशाली है ! दो दिन तो गाँव में आये नहीं हुए और रूप तो देखो ! जवानी तो मानो छलकती पड़ती है। देखा ? कोई उसकी

पीठ पीछे हँसता तो कोई कुछ आवाज़ कसता। यह सब चन्दा को अब नहीं सुहाता था। गाँव के बाजार में काम के लिए जाना भी उसे भार हो जाता। पहले जब वह माता के साथ गाँव-गाँव घूमती और भीख माँगती तब तो उसे ऐसा नहीं लगता था। लोगों की विषमयी दृष्टि से उसे लज्जा नहीं आती थी, लोगों के गन्दे इशारों से मानो उसे कुछ लगता ही नहीं था। निर्विकार, निरहंकार और बेफिक्र और बेपरवाह होकर घूमती थी। पर अब ? एक कटाक्ष, एक खराब निगाह, एक अजाना हास्य उसे तीर की तरह चुभते। ये उसके अन्तर को चीर डालते पर लोगों का मुँह कौन बन्द करे ?

दोपहर के समय, भोजन के बाद, आँगन में, धूप में बैठकर चरखा कातती हुई गाँव की स्त्रियाँ भी गूँगी के सम्बन्ध में रहस्यभरी बातें करती हैं। स्त्रियों की दृष्टि तो सूर्य जहाँ नहीं पहुँचे, उस स्थल पर भी पहुँच जाती है। उस दिन राधू की माँ बोली—

"ओ नत्थू की काकी ! कर क्या रही हो ?"

"ओह राधू की माँ है क्या ! आओ न, चरखा चला रही हूँ।"

"यहीं आओ न !"

"यह आई।"

दूसरी दो-चार स्त्रियाँ भी आईं और चरखा कातती हुई बातें भी करने लगीं।

"नत्थू की चाची ! सुना ?"

"क्या ?"

"ओह मेरी माँ ! तुम भी बिलकुल भोली रहीं...."

"पर है क्या बात ?"

"बात क्या हो ?"

"पर फिर भी तो ?"

"वह जो राधे बाबू के यहाँ काम करने आई है..."

"हाँ...सो।"

"अरे वह छोकरी के तो···"

"क्या ?"

पेट पकड़कर हँसती वह कहने लगी—"पाँच या छः महीने पीछे जो खबर न पड़े तो मेरा नाम नहीं।"

"पर क्या ? किसकी खबर ?"

"तू तो बिलकुल ही भोली है मेरी बहन !"

"तुझको कहना भी है कि इधर-उधर की ही बातें करती रहेगी।"

"धीरे बोल न धीरे···वह गूँगी है न !"

"हाँ है तो, उसमें क्या ?"

"तेरे आँखें भी हैं या ?"

"आँखें नहीं हैं तो क्या कौड़ियाँ हैं ?" नत्थू की माँ ने नकछिकनी की चुटकी सूँघकर कहा।

"हाँ-हाँ, कौड़ियाँ !" राघू की माँ ने कहा और फिर आँखें मटकाकर बोली—

"अरी नत्थू की माँ ! देखती नहीं बहन ! वह छोकरी कैसी दिनों-दिन फूलती जाती है ? अभी-अभी हड्डी-दमड़ी के सिवा कुछ नहीं थी और यह दो-ढाई महीने में तो जाने महारानी बनकर फिरने लगी है।"

"क्यों न फिरे ! राधे बाबू का घर क्या ऐरों-गैरों का घर है ? वह तो राधे बाबू के पिता नहीं रहे, वरना क्या ऐसा-वैसा घर है वह ?"

"है तो ! इसमें कुछ नहीं कहा जा सकता ? इसीलिए तो गोपाल-जैसा शैतान छोकरा घर में रख लिया है—गूँगी-जैसी गाँव-भर में निकृष्ट छोकरी—बरतन माँजने को···"

"तू तो बहुत तेज़ बोली बाई !"

"और नहीं तो ! अपने तो जो मन में, वही जीभ पर।"

ये सब बातें इस रीति से हो रही थीं, मानो और कोई सुनने वाला है ही नहीं। दूसरी दो-तीन स्त्रियाँ चरखा कातती-कातती, मन्द-मन्द, हँस लेतीं और बातें सुन रही थीं।

नन्दू—विधवा ब्राह्मणी—पास के ही घर में रही थी। वह भी चरखा कातने आती। उससे यह सहन नहीं हुआ और वह बीच में बोल उठी—

"हँ-हाँ, जो मन में वही जीभ के ऊपर····पर तुम देखे और जाने बिना किसलिए किसी के ऊपर···"

"हो हो···तुझे क्यों पेट में बहुत दरद होने लगा मेरी बहन! तू जा न वहीं···"

"मुझे जहाँ जाना होगा वहाँ जाऊँगी। इसमें तुम्हारे पेट में जलन होने की कुछ ज़रूरत नहीं मौसी! पर गोपाल शैतान और गूँगी··· गाँव-भर में निकृष्ट···खुद कैसी हो, यह तो कहो।"

"अरे नन्दू! देख, मुँह सँभालकर बोलना, नहीं तो देखने लायक हो जायगी। हाँ, कहे देती हूँ। तुझे बहुत दरद होता हो तो···"

"मेरा पेट दुखता हो, इसमें तुम्हारा क्या? पर किसी का····"

और यह बात प्रचंड रूप धारण कर लेती, परन्तु मोटे पंडित गजानन के पुनीत चरणों के पड़ते ही शान्त हो गई।

"राधू की माँ···हें-हें-हें", पंडित जी बोले "ज़रा एक आने का सूत दोगी क्या···वह तो···जनेऊ बनानी है। सो मैंने कहा—लाओ, इस तरफ़ जाता हूँ तो हाथों हाथ ले आऊँ····वह तो···हें···हें···हें····"

"कहला दिया होता तो मैं खुद ही आ जाती···तुम किसलिए···" राधू की माँ बोली और इस कहने में ऐसा रहस्य-भरा स्वर था कि नन्दू तो क्या, पर वहाँ चरखे चलाती हर एक स्त्री समझे बिना नहीं रह सकी।

"हँ···हँ···हँ···इसमें क्या? तुम तो आती ही हो न···। वह तो मुझे लगा···लाओ मैं ही ले आऊँ···कल एकादशी है···कहीं काम पड़ जाय···"

"लीजिए तो···" और क्रोध में उसने एक आने की सूत की लच्छी पंडितजी की तरफ फेंकी। उसे उठाकर "हँ···हँ···हँ···" करते

पंडितजी घर की तरफ़ चल दिए।

उनके जाते ही नन्दू ने कहा—"बिचारे भले आदमी! सूत के लिए ही इतना चलकर आना पड़ा।"

"गोपाल गूँगी की बात आते ही तू क्यों जल उठती है री?"

"अरे माँ! जल उठती हूँ तो तुम पानी लेकर ठण्डा करने क्यों नहीं आतीं।" और यह कहकर वह पेट पकड़कर हँसने लगी।

इस तरफ़ जब गोपाल पंडित गजानन के घर पहुँचा तब सती शाक साफ कर रही थी। उसको आता देख सती बोली—

"ओह! आओ! आजकल तो बिलकुल दीखते भी नहीं। जीजी को बिलकुल ही भूल गए हो।"

सती को प्रणाम कर गोपाल हँसता-हँसता बोला—"हाँ जीजी! आजकल मैं सब ही भूल गया हूँ।"

"यह क्यों! ऐसा घर में कौन आया है जिसने जीजी को भी भुला दिया भाई?"

"जीजी! मज़ाक करती हो?"

"नहीं, हँसी नहीं करती। पहले तो तू जीजी को भूलता नहीं था। जीजी के हाथ की मधुर रसोई खाने में तुझे आनन्द आता था। अब सब भूल गया?"

"जीजी! पढ़ने में लगा रहता हूँ।"

"पहले कुछ पढ़ने को नहीं था क्या?"

"जीजी छठी कक्षा है। पढ़ाई का पार नहीं। उसमें मरे अ, ब, स, त्रिकोण—और ऐसी-ऐसी अनेक दिमाग खाने वाली बातें याद करनी पड़ती हैं। इससे दिमाग को दूसरी बात याद नहीं रहती।"

"तो छोड़ दे इतने अधिक पढ़ने को भाई! अपने बाप-दादा कहाँ पढ़े थे? हम तो कहे जाते हैं ब्राह्मण को गायत्री का मन्त्र आ जावे, शरीर पर जनेऊ हो, थोड़ा पढ़ना आता हो—फिर मनुष्यों की छलने-ठलने की कला में तो अपने को···"

"जीजी, ऐसा मत कहो। अपने बाप-दादा की बात मत करो। अपने पुरखा जितना जानते थे उसका शतांश क्या सहस्रांश भी हम जानते तो···"

"सच होगा भाई, पुराने ज़माने में ऐसा होगा। पर मैं तो अपने ही बाप-दादा की बात करती हूँ।"

"वह होगा जीजी ! पर इससे अपने महर्षियों को ऐसा···"

"भूली, भूली, ले बैठ !" ऐसा कहकर जीजी ने एक आसन बिछा दिया और गोपाल को उस पर बिठलाकर बोली—"ले बोल, क्या खाएगा ?"

"जीजी ! अभी ही खाकर आया हूँ इससे···"

"बस, तेरी तो बात ही अनोखी···थोड़ा-सा खा लेगा तो पेट नहीं फट जायगा।"

"पर जीजी ! अभी-अभी भाभी ने कचौड़ी····"

"तो यों कहो न कि भाभी के हाथ की कचौरी जीजी की सूखी रोटियों की अपेक्षा अधिक भाती हैं।"

"छिः-छिः क्या कहती हो जीजी ! तुम्हारे हाथ की अनेक वस्तुएँ मैंने खाई हैं। ऐसा असत्य बोलकर पाप मत करो। कचौरी तो मिश्राणी जी ने···"

"पर परसी थी किसने, यह तो कह भाई !"

"ओ !"

"हाँ, नहीं तो। ले, ऐसा नहीं हो सकता। आज सवेरे नाश्ते के लिए पूरी की थीं। तू ठीक समय पर आ गया। खाए बिना काम नहीं चल सकता।"

ऐसा कहकर एक तश्तरी में थोड़ी-सी पूड़ियाँ और अचार लाकर जब सती ने सामने रखा तब गोपाल इन्कार नहीं कर सका।

"खाना ही पड़ेगा जीजी ?"

"नहीं, फेंक देना पड़ेगा।"

"अच्छा तो अब पेट में फेंके ही पूरा पड़ेगा।" और वह खाने लगा।

खादी की मोटी चादर ओढ़े सती नीम के नीचे बैठी, एक अद्भुत तृप्ति अनुभव करती, गोपाल की ओर देखती, शाक साफ करती रही।

यह सती है। उससे एक वर्ष ही बड़ी है। कितना स्नेह उस पर रखती है!

पंडित गजानन की यह तीसरी बार की पत्नी! पचास वर्ष पूरे करके वन में प्रवेश करने योग्य होने पर भी उनकी वासना नहीं मिटी थी। इसी से तो रूप की निधि इस सती को वह घर में ले आए हैं। पर सती, पिता-जैसे लगते पति को पति की भाँति स्वीकार नहीं कर सकी। वह हिन्दू स्त्री है, इससे जिसके साथ उसका विवाह हो गया, लोक-व्यवहार में तो वही उसका पति है; व्यवहार में—बाह्य व्यवहार में—तो पंडित गजानन उसके पति थे ही और वह भी उन्हें पति ही मानती थी। उनके घर में आने के बाद से उनकी गृहस्थी चलाती थी, दोनों समय भोजन बना पति को खिलाती थी, घर के बरतन साफ करती थी, झाड़ू लगाती थी—घर के सारे ही काम करती थी। पर प्रथम रात को ही उसने अपने बिस्तर दूसरे घर में कराए थे। घर के आँगन से मिले हुए तीन घर थे—एक रसोई और दो सोने को। प्रवेश-द्वार के पास के घर में पंडितजी बैठते, लोगों से गप्पें लड़ाते। पहली ही रात को जब पत्नी ने दूसरे घर में सोने का निश्चय कर, पति को पूछे बिना बिस्तर किये तब पति के क्रोध का पारा चढ़ गया। वे बहुत नाराज़ हुए और धमकियाँ दीं, पर पत्नी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पति अपने घर में गये। उनके पैर दबाकर जब सती उठी तब हाथ पकड़कर पति ने कहा—

"ऐसा कितने दिन चलेगा? तू मेरी पत्नी है, पति का कहना मानना पत्नी का धर्म नहीं है क्या?"

इसका उत्तर भी उसने नहीं दिया। उठकर चलने लगी।

जब पति ने फिर से उसका हाथ पकड़ा तब उसे खींचकर वह बोली—

"शरीर पर बलात्कार करना चाहें तो आप कर सकते हैं। तुम उमर में मेरे····" और कुछ वह बोली नहीं। फिर बोली—"मुझसे यह नहीं होगा। तुम किसलिए मुझे विवाह लाए? शास्त्र चाहे जो कहे···मैं ब्याही गई हूँ, इसलिए तुम्हारी गृहस्थी चलाने को तैयार हूँ···पर मेरे मन पर तुम्हारा अधिकार नहीं। मुझे बलपूर्वक···" और सती के मुख का भाव देखकर पंडितजी घबड़ा गए। सती का हाथ अपने-आप उनके हाथ में से खिसका जा रहा हो, ऐसा उनको भास हुआ और वे एक शब्द भी नहीं बोल सके। और फिर पत्नी पानी का लोटा, दातुन आदि सब रखकर दूसरे कोठे में चली गई, तब पंडित गजानन ने एक दीर्घ निःश्वास ली और बोले—"शम्भो! जो करे सो ठीक!" और फिर बोल उठे—"देखता हूँ, छोकरी कितने दिन ऐसा करती है?"

पर पंडितजी ने देखा कि पत्नी उनके लिए सारी ही व्यवस्था रखती है। प्रातः जल्दी उठ चक्की पीसती है। झाड़ू-बुहारी लगा, पूजा वगैरह का सामान तैयार करती है। सवेरे कुछ नाश्ता करा के ही उनको बाहर भेजती है। उनके आने से पूर्व ही भोजन तैयार रखती है। दोपहर तक घर का और-और काम करती है। शाम को भी वह काम बिना बैठती नहीं। उसका अपूर्व सौन्दर्य घर के कोने-कोने को प्रकाशित कर देता है, पर-पर···वह तो वज्र की भाँति कठोर है। अपने नियम में वह दृढ़ है। उसने अपने आसपास ऐसा तो इन्द्र-जाल रचा है कि उसमें से निकालकर उसको प्राप्त करना असम्भव-सा लगता है। अनेक रातें उसने बिना सोए बिताई हैं। कई बार सती को अपनी ओर खींचने का प्रयास पंडितजी ने किया है; पर व्यर्थ। उसका अथाह कठोर संयम, उसकी शीलता देखकर वे आश्चर्य करते हैं।

विचारते हैं—किसलिए उसने इस आयु में शादी की? किसलिए? पर साठ-साठ वर्ष के बूढ़े सयाने लोग नव वर्ष की कन्या को विवाह लेते हैं तो फिर उन्होंने क्या पाप किया है?····और फिर पंडितजी को राधू की माँ याद आती—विवाह से पहले की उसके साथ की प्रणय

गोष्ठी याद आती। उस दिन रात्रि में मिली गूँगी याद आती। पर सब व्यर्थ !

राधू की माँ ने तो कहा भी था—"मैं विधवा हूँ, इससे क्या ? बिठाल लो न घर में ?" और उन्होंने हँसकर कहा था : "ब्राह्मण का नाम डुबोऊँ ? क्या कहा राधू की माँ, मैं ग्राम का पुरोहित, सब मुझे पूजते हैं। ठाकुर साहब के यहाँ मेरा नाम; दूर-दूर के लोग मेरे पांडित्य का बखान करते हैं, यज्ञादि में मुझे बुलाते हैं और दक्षिणा देते हैं और मैं···मैं ऐसा काम करूँ ?"

"तो फिर चुपचाप मेरे घर किसलिए आते हो ?" एक कटाक्ष मारकर राधू की माँ ने कहा था।

"तू तो मेरा मजाक करती है, राधू की माँ ! यह तो जाने राधू की माँ ! प्रेम पागल कहलाता है—क्या समझी ? प्रेम में सब चलता है।"

"प्रेम में सब चलता है तब विवाह क्यों नहीं चलता ?"

"हँ···हँ···हँ····यह तो समाज···"

"समाज ! वाह रे समाज ! कहते हुए शरम नहीं आती। ऐसे पोचे दिल के हो ? कल से मेरे घर मत आना।"

"ओह ! तू तो नाराज़ हो गई !" पंडितजी ने राधू की माँ का हाथ पकड़, उसे रिझाने का प्रयास करते हुए कहा।

"जाओ, जाओ ! शरमाते नहीं। इतने बड़े होकर अब भी।"

"ले, ले अब ! बड़ी हो गई है सो यह देह; मन से तो वैसा-का-वैसा ही जवान हूँ राधू की माँ ! हाँ," उन्होंने आँखें मारकर कहा—"हँ···हँ···हँ···सच कहता हूँ राधू की माँ।"

"छिः ! जाओ, घर में से," वह पास आकर बोली।

और इस वार्तालाप के बाद दो महीने में ही 'रुमझुम-रुमझुम' करती सती को विवाहकर जब पंडित गजानन गाँव में आए तब राधू की माँ आश्चर्य से देखती रही। मेरा पंडित है ग़ज़ब का ! और इसी से तो राधू की माँ सती से जला करती थी। नन्दू ने सच ही कहा

था—"राधू की माँ ! दूसरों की चर्चा किसलिए करती हो ? गोपाल गूँगी, गूँगी-गोपाल, बोलते शरम नहीं आती ?"

गोपाल ने जब खा लिया तब सती बोली—"खड़ा रह, पान बना देती हूँ।"

"जीजी ! पान···"

"नहीं, पान बिना नहीं जाना होगा। कल कथा है, यही कहने आया था न ?"

"तुम तो मेरे मन की सारी बातें जानती हो न जीजी !"

"क्यों नहीं जानूँ ? भाई की बात बहन नहीं जाने तो दूसरा जानेगा कौन ? पर गोपाल, कल सन्ध्या को तुम्हें भोजन यहीं करना है।"

गोपाल जानता था कि आनाकानी करने में सार नहीं इससे उसने कहा—"अच्छा !"

सन्ध्या को चन्दा का ज्वर बढ़ गया।

भाभी ने कहा—"गोपाल !"

"जी !"

"जा भैया शफ़ाखाने से दवा ले आ।"

"जाता हूँ भाभी !"

अस्पताल से दवा लाकर जब गोपाल चन्दा को दवा पिलाने लगा तब उसने दवा पिलाने वाले की ओर एक कृतज्ञतासूचक दृष्टि फेंकी। गोपाल ने देखा—इस दृष्टि में कितनी भीरुता है, इसमें कितनी दया-याचना है ? इसमें हृदय की कैसी व्यथा छिपी पड़ी है ! आज दिन तक गोपाल वह दृष्टि नहीं समझ सका था। यह दृष्टि मानो उसे अपनी तरफ़ खींचती थी। क्या था उस दृष्टि में कि वह खुद ही उस तरफ़ खिंचता था।

उसने अपना हाथ उसके सिर पर रखा। भट्टी-सा जल रहा था

वह। एक क्षण वह खड़ा रहा और उसका माथा दबाता रहा। सन्तोष और आनन्द की विचित्र भावना में डूबती गूँगी जैसी-की-तैसी पड़ी रही। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

जब भाभी दूध लेकर आई तब वह वहीं खड़ा था।

"ले, पी ले दूध," भाभी ने कहा।

"आँ··आँ" कहकर उसने प्रकट किया कि भूख नहीं है।

"भले ही भूख न हो, इतना तो पी जा।"

गूँगी दूध पी गई। गोपाल वहाँ से अपनी कोठरी की ओर चला गया।

दूसरे दिन एकादशी थी। घर में धूम थी। कदली के खम्भे आये थे जो तख्ते के आसपास सजाये गए थे। सुपारी, पान, अक्षत-धूप-दीप नैवेद्य, सब तैयार हो गया था। निमन्त्रण भेज दिये गए थे।

"भाभी!" गोपाल ने कहा।

"हाँ भाई!"

"जीजी ने भोजन के लिए कहा है। ना नहीं कर सका। हो आऊँ न?"

"अवश्य! यहाँ अब कोई काम नहीं। सब तैयार है।"

आज पंडित गजानन बहुत ही प्रसन्न थे। नाई से क्षौर करवा, चोटी ठीक कर, दो-चार बार काँच में मुख देखकर, माथे पर पगड़ी रखी। पैरों में खड़ाऊँ पहन, बगल में पूजा करने की पुरानी पोथियों को दबा जब पंडितजी घर से बाहर निकले तब उनके मुख पर प्रसन्नता फूटी पड़ती थी। घर के नीम के पत्ते और घर के बाहर पीपल के पत्ते पंडितजी की मनोदशा देखकर हँस रहे थे।

नीम के पत्ते कह रहे थे—"हूँ··हूँ····चले हैं बन-ठन के।"

"कैसे न जायँ, वह तो मैं सब जानता हूँ न!" पीपल के पत्तों ने कहा।

"ओह! तुम न जानो तो दूसरा कौन जाने! नदी के किनारे का

चप्पा-चप्पा तुमसे परिचित है भाई ! तुम तो बाहर खड़े-खड़े नदी के इस पार से उस पार तक दृष्टि फेंकते हो न।"

"हाँ, इसी से तो कहता हूँ।"

सचमुच पंडित जी खूब प्रसन्न थे। वह छोकरी याद आ रही थी। आज बहुत दिनों से दिखाई न दी थी। बहुत दिनों से राधे बाबू के यहाँ नहीं गये थे और जब-जब गये थे तब-तब वह हरामखोर छोकरी सामने ही नहीं आई थी। आज तो घर में धूमधाम होगी। इधर-से-उधर दौड़ती होगी, काम करती होगी। मैं भी यह मांगूँगा···वह मांगूँगा···सुना है आजकल तो वह गजब की···"

"क्यों पंडितजी, किधर चले ?" राधिकाजी के मन्दिर के पुजारी ने पूछा।

"हें····हें····हें····जरा कथा करने जा रहा हूँ भाई !"

"कहाँ ?"

"यह तो···अ····अपने उन राधे बाबू···"

"गूँगी वाले राधे बाबू न ?"

"हें···हें···हें···यह तो य···हाँ हाँ···जै जै !" कहकर वे चलने लगे।

जब घर के भीतर पहुँचे तब बगल के अँधेरे कोठे में कोई क्रन्दन करता हो, ऐसा स्वर कान में पड़ा।

"कौन ?" पंडितजी बोल उठे।

आवाज़ सुनकर माताजी बोलीं—

"ओह ! आइए···आइए।"

"आया ! हें···हें माताजी !"

"पधारिए–पधारिए !"

हाथ-मुख प्रक्षालन कर, पट्टे पर विराज अपने चिरपरिचित स्वर में—जिसमें गायन के स्वर मिश्रित थे—वे बोले—

"पानी का प्याला लावज्यो···ओ···" और फिर उनकी दृष्टि पानी

लाने वाले की तरफ लगी। जब वह दृष्टि निराशा को प्राप्त हुई तब उन्होंने फिर से वैसे ही अर्द्ध गद्य अर्द्ध पद्य में कहा—

"इस तश्तरी में थोड़े तन्दुल लावज्यो—ओ···"

इस बार भी जब निराशा हुई तब क्रोधयुक्त स्वर में फिर बोले—और यह स्वर पंचम पर पहुँच गया था—

"और···साथ-ही-साथ इस थाली में थोड़ी-बहुत सुपारी लावज्यो···ओ···"

उस समय भी घूँघट काढ़े राधे बाबू की पत्नी ही आई तब उनकी समझ में आया कि द्वार में पाँव रखते ही जो क्रन्दन-स्वर श्रवण-पथ पर आकर रुक गया था, उस क्रन्दन-ध्वनि का सम्बन्ध अपने हृदय में जिसको देखने की अत्यन्त अभिलाषा है, उसी गूँगी के साथ होना चाहिए, इसमें तिल-भर शंका को स्थान नहीं। अर्थात् जो है सो गूँगी या चन्दा···अपने हृदय में बिराजी हुई···हँ-हँ-हँ···बीमार मालूम होती है।

फिर पूजा-विधि प्रारम्भ होते ही वे अपने बुलन्द स्वर में ललकारने लगे—

"श्री सत्यं नारायणं देवं शंख चक्र गदाधरं···· जो है सो···शंख-चक्र गदा को धारण करनेहारे सत्यनारायण देव···जो है सो···सारी व्यथा को हरनेहारे सत्यनारायण देव को नमस्कार करता हूँ····यहाँ पैसा रखो, तन्दुल याने अक्षत डालो, पैसा रखो···" इस प्रकार पूजा चली। और फिर।

"नैमिषारण्ये···सूत···जो है सो···के एक समय नैमिषारण्य में···शौनकादि ऋषियों से···जो है सो···के नारद मुनि घूमते-घूमते···वह पहुँचे···" इत्यादि।

इस समय गोपाल सती के घर बैठा था और चूल्हे की लाल लपटों के प्रकाश से देदीप्यमान सती का मुख देखता था और विचारता था—यह है जीजी, जो स्नेह से वात्सल्य से उसे नहलाती है। सती! कितना

मीठा नाम है ? दक्षराज की पुत्री का नाम भी सती था न ! और उसी सती ने पति के अपमान होने से पिता दक्ष के यज्ञ में अपनी बलि दे दी थी । उस सती में और इस सती में क्या अन्तर है ? नहीं-नहीं, युग-युग में आकर सती अपने यहाँ जन्म ग्रहण करती है और अपने घर, अपने आँगन, अपने ग्राम, अपने समाज को उज्ज्वल बनाती है। अपने स्नेह से हम-जैसे पामरों को संजीवन करती है । वह बैठा-बैठा सती का मुख देखता था ।

"क्या देखते हो ?" सती ने पूछा ।

"तुम्हारा मुख जीजी !"

"देखने योग्य है क्या ?"

"हाँ ।"

"क्या ?"

"तुम्हारा स्नेह, तुम्हारा वात्सल्य ।"

"तू तो इतना वाचाल किसी दिन नहीं था भाई ! आज यह वाचालता कहाँ से प्रकट हुई ?"

"गूँगे लोग भी जीजी, किसी-किसी समय वाक्-शक्ति पा जाते हैं। और वह तुम-जैसी सती के प्रताप से ।"

"बहुत प्रशंसा मत करो भाई ! मैं कैसी हूँ, यह तो मैं ही जानती हूँ ।"

"हाँ जीजी, और मैं भी जानता हूँ ।"

"क्या जानते हो ?"

"इस प्रकार कहने की आवश्यकता नहीं जीजी ! मैं तो छोटा भाई हूँ ।"

"अच्छा-अच्छा ! पर क्या जानते हो यह तो कहो !"

"किसी दिन कहूँगा जीजी, आज नहीं । तब सुनोगी न मेरी बात ?"

"ज़रूर, ज़रूर सुनूँगी । क्यों नहीं सुनूँगी ?"

"जीजी !"

"हाँ।"

दक्षराज की पुत्री सती की बात याद है ?"

"हाँ, क्यों ?"

"नहीं, यों ही पूछता था।"

"नहीं, यों ही नहीं पूछते थे, कारण से पूछते हो। कदाचित् कहना चाहते हो कि कहाँ वह सती पति के लिए मृत्यु से भेंट करने वाली और कहाँ यह···"

"छिः-छिः, जीजी ! ऐसा कहकर मुझे पाप में मत डालो।"

"नहीं, सच ही कहती हूँ भाई, मेरी प्रशंसा करने को ही तुमने दक्ष-पुत्री का नाम लिया है।"

"हाँ जीजी, यह बात सत्य ! मैं सचमुच तुम्हारी तुलना करता था; पर इस सती और दक्षपुत्री सती में मुझे कुछ···"

"राम-राम—ऐसा झूठ····"

"सत्य कहता हूँ जीजी ! जब से तुम इस घर में आई हो तब से मानो यह सारा घर बदल गया है। तुम्हारे आने से पहले यह घर देखा है और पीछे भी देखा है और देख रहा हूँ। जो सेवा, जो शुश्रूषा···"

"बहुत हुआ, बहुत हुआ···गूँगे को भी ऐसी वाक्-शक्ति प्रकट न हो। ऐसी बातें करके तुम मुझको···"

"ठीक जीजी ! गूँगा मनुष्य अब फिर से गूँगा बनता है। "और यह कहकर वह चुप हो गया।

रसोई तैयार हो चुकी थी। सती ने गोपाल के लिए थाली परसी और बोली—

"चुपचाप बैठ जाओ। अब बोलने का कुछ काम नहीं।"

मौन बैठा गोपाल खाने लगा। त्रिकोणाकार पराठे, तीन तरह के शाक, रायता, हलवा···यह सब मौन-मुख पेट में डालने के सिवाय छुटकारा नहीं। चुपचाप वह खाने लगा और सती सन्तोष से यह देखती

रही।

"जीजी, तुम्हारे पास से एक बात मैं सीखा हूं," गोपाल ने भोजन करते-करते कहा।

"क्या ?"

"स्नेह, यह एक अमूल्य वस्तु है।"

"भाई, यह तो तुम मेरे पास से नहीं सीखे। यह सीखने कहीं जाना नहीं पड़ता। समस्त ब्रह्माण्ड स्नेह पर ही अवलम्बित है। जीवन के अणु-अणु में यह स्नेह, प्रेम-भाव, जो भी इसे कहो सो व्याप्त है। उसके बिना पृथ्वी स्थिर रह ही नहीं सकती।"

"यह सब तुम कहाँ से सीखीं जीजी ! ये तो मानो वेद-वाक्य..."

"मैं कहती हूँ न भाई, यह सीखने कहीं जाना नहीं पड़ता। प्रकृति ही यह सब सिखाती है। जो प्रकृतिस्थ हैं, जो प्रकृति के चरणों में अपना सिर नवाते हैं, उनको प्रकृति ही यह सब सिखाती है।"

"जीजी ! यह मैं कभी नहीं भूलूँगा।"

"किसे पता शायद कभी भूल ही जाओ।"

"ऐसा दुष्ट तो हूँ नहीं मैं।"

"नहीं, ऐसा नहीं; पर भूलना, यह भी प्रकृति की एक साधना है। पथ एक ही है। टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर होकर भी संसार वहीं जाता है। भूलें भी होती हैं, गम्भीर भूलें भी होती हैं, पर वे अनिवार्य होती हैं, तभी होती हैं। पर भूलें करने के पीछे भी प्रकृति उसे अपने परम लक्ष्य की तरफ़ खींचे जाती है।"

गोपाल सती के इन वाक्यों को मुग्ध होकर सुनता रहा। इन वाक्यों का अर्थ वह समझ पाया कि नहीं, यह भी वह निर्णय नहीं कर सका। पर इनमें ऐसी शक्ति थी, इन वाक्यों में ऐसा जादू था कि वह मुग्ध की भाँति जीजी के मुख की ओर देखता रहा।

"यह परोसा जैसा-का-तैसा थाली में पड़ा है, कब खाना है ?"

"ओह !" और उसने खाने में चित्त लगाया।

जब घर की तरफ़ चलने लगा तब उसका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित था; उसके हृदय का भार मानो हल्का हो गया था । सारी प्रकृति मानो आनन्द में मग्न है, ऐसा उसे प्रतीत हो रहा था । बाहर आते ही—खर-खर, खर-खर करते पीपल के पत्ते मानो ताल देकर आनन्द से नाचते उसका स्वागत करने लगे । नीचे उजाड़ नदी का प्रवाह मानो शान्ति से बह रहा है ।

घर पहुँचा तब पंडित गजानन अपने पुराने और जाने हुए स्वर में कथा सुनाने में संलग्न थे—जो है सो—"वह वणिक बारम्बार पश्चात्ताप करने लाग्यों के…जो है सो उसने सत्य नारायण का पूजन नहीं…जो है सो…उसके ऊपर यह कोप भयो है…इति श्री सत्य नारायण… अध्याय समाप्त…" और कथा सम्पूर्ण होते ही 'अच्युतं केशवं' गाया गया तब पंडितजी का सम्पूर्ण शरीर हिलने लगा ।

प्रसाद लेने के बाद सब लोग बिखर गए और बहुत रात गये जब गोपाल सोने के लिए जा रहा था तब एकाएक उसे ज्वर से घिरी हुई चन्दा याद आई । उसकी गुदड़ी वाली बिछौनी के पास जाकर, माथे पर हाथ रखकर देखा तो ज्वर हल्का हो गया था और चन्दा ख़र्राटे लेती सो रही थी ।

सोने से पूर्व आज उसने सती को प्रणाम किया और उसी का ही विचार करता हुआ वह सो गया ।

छः

चन्दा अब बिलकुल स्वस्थ हो गई है। मुख पर जो फीकापन आ गया था, वह भी उड़ गया है। अब तो गालों पर लाली दौड़ने लग गई है। इन पन्द्रह दिनों में उसने सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया है। पर पहले की अपेक्षा अब घर के काम में अधिक व्यस्त रहती है। सवेरे चार बजे उठकर वह चक्की पीसने लगती है। गोपाल अपने बिस्तर में पड़ा चक्की की घर्र-घर्र-घर्र सुना करता है। चक्की का यह संगीत अद्भुत होता है। खाट में पड़े-पड़े जिसने इस संगीत को सुना है, वही इसके आनन्द को समझ सकता है। चन्दा के मुख से निकलता 'आ—आ आ' का स्वर चक्की की घरघराहट में मिल जाता है और ऐसा सुन्दर वातावरण पैदा करता है कि गोपाल को बिछौना छोड़ने का मन नहीं होता। न जाने कब तक वह इस संगीत को सुना करता है।

और चन्दा! चन्दा को इस बीमारी में एक अनमोल वस्तु प्राप्त हुई है, और वह है गोपाल की मौन सहानुभूति। गोपाल अपने स्नेह का प्रदर्शन नही करता, पर चन्दा यह समझती है गोपाल के हृदय-तल में उसके लिए स्थान अवश्य है। उसे जानने के लिए, या उसके प्रकटीकरण के लिए वह उत्सुक नहीं। वह प्रेम है, यह जानकर उसे सन्तोष है। गोपाल की कोठरी साफ़-सुथरी कर देने में, उसकी पुस्तकें जमा देने में, और उसके ऐसे अनेक छोटे-मोटे कामों को कर देने में उसे आनन्द आता है।

राधे बाबू का जीवन सोने में, अच्छी चीज़ें खाने में, हुक्का गड़गड़ाने में और दुनिया-भर की सारी समझदारी उनके उलूक-जैसे नेत्रों में ही भरी है यह दिखलाने में, शान्तिपूर्वक बीत रहा है।

भाभी का गोपाल के प्रति स्नेह वैसा ही निर्मल है। अब भी सोने

के पहले गोपाल भाभी के पास जाकर अपनी दिनचर्या सुनाता है, और भाभी उससे सन्तुष्ट है।

इधर मिश्राणी का जीवन, कबरी बिल्ली से मोरचे लेने में, उसे गालियाँ देने में और युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा उसे शिक्षा देने में बीत रहा है।

इस घर में एक ही जीव अशान्त दिखाई देता है। वे हैं माताजी। इतनी बड़ी गृहस्थी चलाने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इतनी बड़ी गृहस्थी, राधे बाबू के १५-२० की माहवारी में चल नहीं सकती। इस ऋद्धि-सिद्धि का आधार है माता के पास बचाए हुए पैसों पर। पर इस प्रकार कब तक निभेगी? राधे निरा मूर्ख निकला पढ़ा नहीं। अक्ल की और उसकी मानो सदैव लड़ाई रही। गृहस्थी में पद-पद पर पैसों की आवश्यकता रहती है।

पूजा करते-करते, नेत्र मूँदे, वे भगवान् की सेवा कर रही हैं, पर ध्यान न जाने कहाँ चला जाता है और वे विह्वल बन जाती हैं। पतिदेव की जुटाई सम्पत्ति धीरे-धीरे खर्च होती चली जा रही है। इन पाँच-छः वर्षों में नकद रकम करीब-करीब सब खर्च हो चुकी है। पाँच सौ-छः सौ रुपयों के सिवा शेष कुछ नहीं। हे प्रभो! अब गहने बेचने का भी समय आवेगा क्या? हरि हरि! अब क्या होगा?

उन्हें अपने स्वर्गीय पति का स्मरण तो आया। उनके समय में घर में कैसा ऐश्वर्य था? चार-चार नौकर, मेहमानों की भीड़! ओह! उनके जाते ही सब-कुछ अदृश्य हो गया। गाँव के वे नामी वकील थे। घर में रुपयों की रेल-पेल थी। गाँव में कितनी प्रतिष्ठा थी! और आज?

हाँ उमर थी सो गए, पर उन्हें क्यों छोड़ चले गए? वे ही पहले क्यों चले गए? और यह सारा भार?

फिर माताजी की आँखों से टप-टप आंसू झरने लगे। ओह! पूजा करते-करते ये विचार? प्रभो, प्रभो! यह क्या? तेरी सेवा करते-करते ये ऐसे विचार क्यों? ऐसी दुर्बलता क्यों?

ऐसे निर्बल विचार किसलिए ? सम्पूर्ण जगत् का तू पालन करता है। चींटी से लेकर हाथी तक सबको तू खिलाता है तो फिर इस छोटे से घर की—कुटुम्ब की—मुझे चिन्ता किसलिए ? चिन्ता करने वाला तू जो बैठा है, फिर मुझे चिन्ता कैसी ? हरि हरि···इस निर्बल मन को तो देखो। और फिर अपने पर और अपने निर्बल मन के लिए हँसी आती है।

उनका मन भगवान् की आरती उतारने में लग जाता है और फिर चित्त शान्त होते ही मुख पर प्रफुल्लता छा जाती है।

पूजा से उठ वह आचमन लेती है, तभी सामने पुत्र-वधू आकर कहती है—

"माताजी, मिश्राणी जी कहती हैं कि घी मंगाना पड़ेगा।"

"गोपाल से कह दे कि एक रुपये का घी ले आए।"

"अच्छा !"

"और माँजी ! गेहूं भी बीत गए हैं।"

"गेहूँ भी मँगा लो।"

"और हाँ माँजी, तेल चार दिनों से अधिक नहीं चलेगा।"

"इतना सारा तेल कैसे चुक गया ?"

"माँजी, घर में रोज़-रोज़ नाश्ते में और भोजन में नई-नई चीज़ें····"

"अच्छा, अच्छा !"

फिर बहू की तरफ़ घूमकर बोली—"बहू !"

"हाँ माँ !"

"तेल पाँच सेर मँगा लेना।"

"पर····"

"क्या ?"

"मेरे पास····रुपये···"

"रुपयों की चिन्ता किसलिए करती है ? ले यह ले रुपये।"

पाँच रुपये निकाल कर दे देती हैं।

"क्या आज से ही प्रभु ने परीक्षा आरम्भ कर दी है ?" मात विचारने लगी ।

और इसके बाद माँ के दिन फिर इसी चिन्ता में बीतने लगे साथ-साथ वह और अधिक समय पूजा में संलग्न रहने लगीं । ए दिन वह इसी प्रकार पूजा करते हुए धीमे स्वर में गा रही थीं कि रा बाबू धीरे-धीरे समीप आकर बोले—

"माँ !"

"क्या है ?" माँ ने पूछा ।

"तार आया है ।"

"किनका है ?"

"सुधीर बाबू की पत्नी, सख्त बीमार है । तुमको बुलाया है ।"

"अच्छा," माता ने जवाब दिया और नेत्र बन्द करके फिर प्रार्थ करने लगीं ।

राधे बाबू दो क्षण माता के मुख को विस्फारित नेत्रों से देखते रहे वे समझते थे कि 'तार आया है' कहकर उन्होंने एक महान् कार्य कि है, पर इस तरफ़ इस महान् कार्य की प्रशंसा न होकर अवहेलना हुई यह जानकर उनको ज़रा बुरा लगा । सिर खुजाते हुए वे खड़े रहे । पत ने आकर उससे कहा—

"खड़े क्या हो ? जाओ वह चन्दा हुक्का लेकर खड़ी है । माँ पू कर रही हैं, यह देखते नहीं ?"

"हो··हो····ठीक है, ठीक है," कहकर पति दूसरे घर की तर चल दिये ।

पूजन-विधि समाप्त करके, माता जब सामने के घर में आईं त अपने प्रिय पट्टे पर अन्दर की कोठरी में बैठे-बैठे, राधे बाबू आँखें फ कर आकाश की ओर देखते हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और मुख धुएँ को आकाश की ओर गतिमान करने में प्रवृत्त थे । संसार में धुआँ उड़ाने के सिवाय दूसरा कोई बड़ा काम नहीं, ऐसा उनके मुख

भाव से प्रकट होता था ।

भीतर आकर माता बोलीं—"राधे !"

"ओ····ओ···जी" तन्द्रा भंग होते ही सीधे बैठकर वह माता की ओर देखने लगे ।

"राधे, इस ओर साँझ को गाड़ी जाती है न ?"

"जी !"

"तो ठीक है । कल शाम चल देंगे । तू भी छुट्टी ले लेना ।"

"पंडितजी से मुहूर्त तो पूछ लें," राधे बाबू बोले ।

"हाँ, मुहूर्त की बात ठीक है । चंदा !" उन्होंने आवाज़ दी । जब चन्दा वहाँ आई तब माता ने उसे समझाकर कहा—

"पंडितजी के घर जा और कहना—माताजी बुलाती हैं ।"

"अच्छा !" मुँह बिगाड़ती हुई वह चल दी ।

पंडितजी के घर चन्दा भाग्य से कभी-कभी ही जाती थी । वहाँ जाना उसे भाता नहीं था । पंडित गजानन की स्थूल काया, उनके हाव-भाव, उनके हाथ के इशारे और आँखों से निकलती उनकी भूखी दृष्टि चन्दा सहन नहीं कर सकती थी । फिर भी आज सन्ध्या के समय उसे वहाँ जाना पड़ रहा है । गये बिना छुटकारा नहीं । उसके छोटे-से मस्तिष्क में अनेकों विचार उठने और शान्त होने लगे । राधिका जी के मन्दिर को पारकर, बाईं तरफ़ की गली में हो, जब वह पीपल के नीचे टेकरी पर आ पहुँची तब दूर उस सोरती के मैदान की दूसरी ओर सूर्य भगवान् अस्त होने की तैयारी में थे । उजाड़ नदी का पानी लाल और केसरिया रंग का हो गया था । पीपल के पत्ते खर-खर स्वर करते डोल रहे थे । नीचे पुल पर कोई भी दिखाई नहीं देता था ।

जब पंडित गजानन के घर में वह घुसी तब आँगन में खुले शरीर बैठे पंडितजी सन्ध्या में संलग्न थे । पंडित गजानन थे अत्यन्त धर्मिष्ठ जीव । त्रिकाल सन्ध्या करते और भगवान् क्रुद्ध न हो जायँ इसके लिए सदा सचेष्ट रहते थे । सती इस समय पड़ोस में किसी काम से गई थी ।

गूँगी को अन्दर आई देखकर पंडितजी ने नेत्र खोले और हँसकर बोले—

"हूँ···हूँ···हूँ ! आओ-आओ, बैठो !"

पर गूँगी जड़वत् जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही। पंडितजी ने अपनी सन्ध्या-विधि शीघ्र ही समाप्त कर देने के प्रयास में श्लोकों को जल्दी-जल्दी गा डालना शुरू किया। अन्त में 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' बोलकर, भगवान् को बारम्बार प्रणाम करके, गाल पर लगातार पाँच-छः चपतें जमा दीं और बोले—

"माफ करना मेरे प्रभो, हम तो मनुष्य हैं, भूलों से भरे हुए।"

और फिर खड़े होकर गूँगी के पास आकर बोले—

"हूँ···हूँ···हूँ···कैसे आई ? आज तो बहुत दिनों बाद दर्शन दिये ?"

चन्दा ने अपनी भाषा में समझाने का प्रयास किया—"बुलाती हैं माताजी—पुस्तक—पत्रा—पंचांग, हाँ, उसको लेकर आपको बुलाती हैं।"

पंडितजी गूँगी की भाषा को भली प्रकार समझने पर भी आज न समझने का ढोंग करते पास आकर उसका हाथ अपने हाथ में ले पूछने लगे—"क्या कहा ?"

"आँ—आँ···वहाँ" हाथ से घर की ओर संकेत करती वह बोली।

बिलकुल निकट आ उसके दोनों हाथ पकड़ बोले—"अच्छा, अभी ? क्यों कोई विशेष काम है ? वाह तू तो बहुत समझदार है—वाह···तबीयत तो प्रसन्न····" और चन्दा अपने दोनों हाथों को छुड़ाने का प्रयास करे इससे पहले उसे अपने पास खींच···और उसी समय पत्नी का स्वर सुनकर उसे छोड़ बोले—

"ओह···ठीक-ठीक, यह आया···कहना, आता हूँ।" और फिर पत्नी की तरफ़ मुख करके बोले—

"हाँ···राधे बाबू के यहाँ बुलाते हैं। अभी आता हूँ हाँ···" यह

कहकर शरीर पर बंडी पहनने लगे।

गूँगी के गालों पर से रक्तिमा उड़ गई थी। सती भीतर आई, पर एक शब्द भी नहीं बोली। मिट्टी के तेल की छोटी-सी चिमनी जलाई और बाहर आकर बोली—

"बैठ न, खड़ी क्यों है चन्दा? ठीक है न?" फिर प्रकाश में उसका फीका मुख देखकर बोली—

"क्यों अभी ठीक नहीं हुई? गोपाल तो कहता था, अब बिलकुल स्वस्थ है।"

चन्दा ने हँसने का व्यर्थ प्रयास किया। पीछे एकाएक न जाने क्या विचार आया कि सती के चरणों में प्रणाम करके चल दी।

सती को भी चन्दा के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। यों एकाएक चरणों में गिरने का कारण क्या? और इसके बाद जाने क्यों अपने मन की व्यथा को छिपाती हो, या जाने पकड़े जाने का डर हो, इससे वह यहाँ से मुँह फेरकर चल निकली थी।

सती को वह रात याद आई जब पति ने 'डाकिन-डाकिन' कहते हुए घर में प्रवेश किया था और स्नान किया था। आज ऐसा ही कुछ दृश्य उसकी आँखों के सामने आया था। पर वह भ्रम होगा, ऐसा ही मानने का उसने प्रयास किया।

जाते समय पति ने फिर से कहा—"हँ···हँ···हँ···जाता हूँ। अभी आता हूँ। समझी न! हँ···हँ···हँ····" पर पत्नी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मानो कुछ हुआ ही नहीं।

पंडित गजानन माताजी के पास आकर प्रणाम करके बोले—

"हँ····हँ····माताजी, कहिए। इस समय कैसे स्मरण किया? कोई विशेष कार्य है?"

"पंडितजी, कल अच्छा मुहूर्त है न? साँझ की गाड़ी से जाने का विचार है।"

"हाँ····हाँ, अभी-अभी देख देता हूँ।" और ऐसा कहकर उन्होंने

पंचांग खोला और गणना करके बोले—"हाँ माताजी, बहुत ही शुभ मुहूर्त है। दो बजे तक घर में से निकल जाना चाहिए। फिर मुहूर्त अच्छा नहीं।"

"ठीक।"

"और कुछ ?"

"नहीं, पधारिए।"

"गोपाल कहाँ है ?" पंडित ने चन्दा को देखकर प्रश्न किया—

"वह तो बाहर घूमने गया मालूम होता है," माताजी ने कहा।

"अब भी घूमना-फिरना छोड़ा नहीं। इस छोकरे से तो भगवान् बचाए। कुल को कलंक न लगाए तो ठीक। मैं तो उससे··हरि-हरि···"

"नहीं, अब तो सुधर गया है।"

"वह तो देखा जायगा, कब उसका···"

इतने में गोपाल आ पहुँचा।

"क्यों रे गोपाल ?"

गोपाल ने पंडितजी की तरफ़ देखा।

"पढ़ाई ठीक चल रही है न ?"

"जी !"

"हाँ भाई, उपकार कभी मत भूलना। माताजी के पुण्य का ही प्रताप है कि यहाँ रहकर आनन्द से···"

यह सुने बिना ही गोपाल अपने काम में लग गया।

और इसके बाद माताजी को प्रणाम करके पंडितजी भी घर की तरफ़ चल दिए।

ठण्ड में तेज़ वायु से काँपती लता की तरह चन्दा अब भी थर-थर काँप रही थी। इस तरह काँपने का कारण भी वह समझ नहीं सकी। कभी वह इतनी डरी न थी। पहले भी ऐसा अनुभव माता जीवित थी तब हुआ था; तब तो वह इतनी व्याकुल नहीं हुई थी। आज सम्पूर्ण हृदय क्यों व्यथित और पीड़ित हो रहा है ?

जब पंडित गजानन का स्थूल शरीर घर से अदृश्य हुआ तब गूँगी ने शान्ति की साँस ली और एक कोने में चुपचाप बैठ गई। बहुत देर बाद जब उसे स्वस्थता प्राप्त हुई तब वह अपने काम में झटपट लग गई।

घर जाकर भोजन करने के बाद पंडितजी ने पत्नी से कहा—"हूं-हूं···अभी आता हूँ हूँ···हूँ···"

पत्नी ने काम से निपटकर पति के लिए बिस्तर बिछाए और अपना बिस्तर नीम के नीचे चौक में ही किया। पति सोने आए तब दातुन वगैरह रखकर जब पत्नी सोने जाने लगी तब पति ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"हूँ-हूँ···बाहर ही सोना है ?"

"हाँ," पत्नी ने अत्यन्त स्वस्थता से कहा।

"बैठो न ?"

"सोइए, देर होती है।"

"हूँ···हूँ···मैं तो बहुत ही पापी हूँ, इसलिए ही···"

"पाप और पुण्य सब मन के हैं।"

"हूँ···हूँ···तुम तो तत्त्ववेत्ता हो न ? मैं तो···"

पत्नी को पति की इन बातों से आश्चर्य हुआ। वह समझी आज सन्ध्या की घटना का इस क्षमा-याचना के साथ कुछ सम्बन्ध हो तो आश्चर्य नहीं। परन्तु मानो कुछ भी न हुआ हो, कुछ भी दृष्टि में नहीं आया हो, ऐसा व्यवहार करती वह बोली—

"सो जाओ न। मैं भी सोऊँगी," और फिर वह अपनी शय्या की तरफ चल दी।

शीत के दिन चले गए थे। अब गरमी पड़ने लगी थी। यद्यपि बाहर सोने योग्य गरमी अभी नहीं पड़ती थी तो भी सती तो नीम के नीचे आँगन में ही सोने लग गई थी। बिछौने पर पड़ी-पड़ी वह नीम के पत्तों का धीमा-धीमा स्पन्दन देख रही थी। पत्तों के बीच में से थोड़े से तारे भी दिखाई देते थे। बिछौने पर पड़ी-पड़ी वह सन्ध्या

की घटना पर विचार करने लगी। उस रात को भी 'डाकिन-डाकिन' करते अन्दर आए पति और आज क्षमा माँगते पति—दोनों में एक अद्भुत साम्य था, ऐसा उसे लगा। पर इससे उसे क्या? उनको जो भावे वह करें, इसमें उसको क्या? पति के रूप में उसने पंडितजी से कुछ भी सम्बन्ध स्थापित नहीं होने दिया था। फिर उन्हें अच्छा लगे वैसा करें, उसे इसमें क्या?

पर इस तरफ़ पंडितजी की मनोदशा भिन्न थी। उनकी धारणा थी कि पत्नी उनको बुरा-भला कहेगी, घर में कलह पैदा कर देगी, अपने बाल खींच, ज़मीन पर सिर पटक-पटककर, रो-धोकर सारे गाँव को इकट्ठा कर लेगी और उनके गुणगान करेगी। पर जब ऐसा कुछ भी नहीं हुआ तब पंडितजी का मन पत्नी की तरफ़ एक पूज्य भाव से भर गया। वे विचारने लगे—कितनी भली और भोली है बिचारी! उनको अपनी दूसरी बार की पत्नी याद आई। ऐसा ही एक प्रसंग स्मरण आया। राधू की माँ काम के सिलसिले में घर में आई थी और उन्होंने ऐसा ही कुछ महाकार्य किया था। पत्नी को ऐसी शंका होते ही उसने चंडिका का स्वरूप धारण किया था और सारे मोहल्ले को इकट्ठा कर लिया था। यह प्रसंग याद आते ही पंडितजी को रोमांच हो आया और फिर बोले—"शम्भो! शम्भो!! कैसा विचित्र मन है यह? इस वृद्धावस्था में पहुँच जाने पर भी मन मरता नहीं। यह वासना हठीली शान्त होती ही नहीं। शम्भो, शम्भो! जो करे सो ठीक!"

और फिर करवट बदलकर मन में पत्नी को प्रणाम कर गहरी निद्रा में मग्न हो गए।

पर पत्नी को बहुत रात बीत जाने पर भी नींद नहीं आई। अनेक विचारों में उसका मन डोलने लगा। इस प्रसंग को मन में से निकाल डालने का उसने प्रयास किया। बारम्बार गूँगी और गोपाल का चेहरा उसकी आँखों के सम्मुख आता और उसे लगता—कैसी अच्छी जोड़ी

है ? जब उसे नींद आने लगी तब आधी से अधिक रात बीत चुकी थी।

दूसरे दिन माँ पुत्र राधे बाबू को लेकर चल दीं। सारा घर सूना-सूना लगने लगा। कबरी बिल्ली का उपद्रव भी मानो आज एकाएक शान्त हो गया। मिश्राणीजी दोपहर के समय रसोईघर में ही पड़ी-पड़ी सोने का प्रयास करने लगीं और बिल्ली को गाली देना भूल गईं। दूर कोने में पड़ी कबरी भी आज मानो उदास-सी अपने नाखून साफ़ करती रही, पर खाद्य-पदार्थों की तरफ़ बढ़ी नहीं। भाभी को आज कुछ भी काम सूझता नहीं। गोपाल पाठशाला गया है, घर में काम नहीं, इससे वे भी सोने का उपक्रम करके लेट गई हैं।

केवल चन्दा काम में मस्त दिखाई देती थी। उसके मन के भाव कौन जान सकता है ? अपनी इच्छा व्यक्त करने, अपने मन की लगन प्रकट करने को ईश्वर ने उसे वाचा ही कहाँ दी है ? पर आज वह अधिक वेग से बरतन घिसती थी और बरतनों के घर्षण की ध्वनि में 'आँ-आँ आँ' का उसका स्वर मानो छिप जाता था।

सात

माता जी को गये एक मास से अधिक बीत गया है। सख्त गरमी पड़ने लगी है। दोपहर के समय लू चलती है। घर से बाहर पैर धरने का मन नहीं होता। सम्पूर्ण भूमि तवे की भाँति तपती है। आमों में कच्ची कोरियाँ (अमियाँ) लगी हैं, नदी का जल कुछ कम हो गया है, उसका प्रवाह भी अधिक धीमा हो गया है।

गोपाल का मन दोपहर के समय आमों की बगिया में जाकर केरियाँ तोड़ने को तरसता है। फिर से उसका मन विचलित होने लगा है। यह जीवन भार-सा लगता है। कहीं दूर-दूर भाग जाना चाहता है, पर भाभी की याद आते ही वह सब विचारों को धकेल देता है और अपने काम में लग जाता है।

माताजी के तीन पत्र आए हैं। अभी तक देवरानी स्वस्थ नहीं हुई। अभी उनका आना नहीं हो सकता। माता को पहुँचाकर वापिस आते ही राधे बाबू फिर हुक्का गुड़गुड़ाने के कार्य में संलग्न हो गए हैं। और माता नहीं है, इससे मिश्राणी जी तथा पत्नी पर हुक्म चला नये-नये भोज्य-पदार्थ खाने में अपनी सारी शक्ति ख़र्च करते हैं। पत्नी जब कहती है, "ज़रा सँभलकर खर्च करो," तब जवाब देते हैं—"तू क्या समझे? मां ने किसी दिन खाने-पीने में आनाकानी नहीं की तब तू किसलिए करती है?" और इसी प्रकार उनके दिन बीत रहे हैं।

उस दिन सख़्त गरमी थी। पृथ्वी के गर्भ में से ज्वालाएँ निकल कर, चारों ओर फैल विश्व-भर को भस्मसात करने के प्रयत्न में लगी थीं। कभी-कभी बार हवा का वर्तुलाकार चक्कर धूल को आसमान तक ले जा रहा था। सन्ध्या होते-होते आकाश में बादल चढ़ आए, सम्पूर्ण पृथ्वी मानो बादलों के आनन्द से प्रसन्न हो गई। आमों के बगीचों में मोर कूकने लगे और सारे गांव से कहने लगे—"आए हैं मेघराज आए हैं, खूब बरसेंगे और पृथ्वी को शान्त करेंगे।"

पाठशाला में बच्चे आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर ऊँचा मुँह करके आकाश की ओर देखने लगे। मास्टर भी मानो प्रकृति का यह सुन्दर दृश्य देखने में व्यस्त हो गए। पढ़ाई एक तरफ रह गई।

गोपाल निर्निमेस दृष्टि से आकाश का यह परिवर्तन निहार रहा था। कहाँ सूर्य का प्रखर ताप और कहाँ यह मेघों का समूह, जो सम्पूर्ण पृथ्वी को श्यामल बना देता है? घन-गर्जन कैसा मधुर लगता है?

और मयूरों का केकारव मेघों को नीचे झुक पड़ने के लिए मानो आह्वान करता है।

फुहारें पड़ने लगीं। पाठशाला बन्द हुई, घण्टी बजते-न-बजते आकाश में से मोटी-मोटी बूँदें गिरने लगीं और देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो गई।

पाठशाला से छूटते ही सब विद्यार्थी घर की तरफ दौड़ने लगे, पर गोपाल को घर की ओर जाने की इच्छा नहीं हुई। अभी तो केवल चार ही बजे होंगे। घर जाने का यह समय नहीं है।'पर भाभी? नहीं-नहीं, भाभी ने ऐसा कहा है कि घूमने भी मत जाओ। उसका मन तो प्रकृति के इस स्वरूप में ऐसा मग्न हो गया था कि उसने घर जाना स्थगित कर दिया।

बाईं ओर की गली में से होकर जब वह गाँव की मस्जिद के पास आया तब गली में पानी बहने लगा था। वह बिलकुल भीग गया था। थोड़ी देर में मस्जिद की छत पर की नाली में से ज़ोर से पानी नीचे गिरने लगा। वह उसके नीचे खड़ा होकर नहाने लगा। खूब नहाने के बाद वह आगे बढ़ा। वे दो इमलियाँ हवा के ज़ोर से इधर-से-उधर झूल रही थीं। वह आगे बढ़ा। यह नाथू चमार का घर। वहाँ भीतर बैठा नाथू जूता सी रहा है, पर ऊपर छप्पर में से तो पानी पड़कर उसे भिगो रहा है।

यह सामने रहा गाँव का अस्पताल। कीचड़ से भरी हुई सड़क को पार करके, अस्पताल के सामने के मैदान में वह आ पहुँचा। सड़क के पास का बड़ा नाला पानी से लबालब भर गया था, और उसमें पानी तेज़ी से दौड़ रहा था। वह नाले में कूद पड़ा और गँदले पानी में ही नहाने लगा। कमर तक पानी आता था। आकाश अधिक गहरा होने लगा था। बिजली चमकती थी और वर्षा भी अधिक वेग से गिर रही थी। नाले का पानी भी खल-खल करता बड़े वेग से बहने लगा था। वहाँ से वह आगे चला। मैदान के बीच में बड़ का पेड़ इधर-से-

उधर झोंके खा रहा था। बरगद के पास आकर उसे विचार हुआ—इस बड़ के ऊपर कितनी बार वह झूला है; कितनी बार इसके ऊपर चढ़कर इसके फल खाए हैं! आज भी इसके ऊपर चढ़ जाने को उसका मन चाह रहा है। लाओ चढ़ भी जाऊँ!

बड़ी फुरती से वह बरगद के वृक्ष पर चढ़ गया। पानी की धाराएँ पृथ्वी पर तड़-तड़-तड़ करके गिर रही हैं। मैदान में चारों ओर पानी-ही-पानी दिखाई देता है। ओह! खेतों में भी पानी भर गया है। सामने के आम के नीचे वाली खाई पानी से लबालब भर गई है। सामने गाँव का दवाखाना है। छत की छोटी-छोटी नालियों में से परनाले की तरह पानी नीचे गिर रहा है।

बड़ के ऊपर से नीचे उतर वह सामने के खेतों में घुसा। आम के नीचे की खाई के पास आते ही उसमें कूदा। उसमें सिर डूबे, इतना पानी था। तैरता-तैरता आम के पास आ लगा और उस पर चढ़कर कच्ची अमियाँ खाने लगा···हाँ, कैसा आनन्द है? स्वतन्त्रता में कैसा मज़ा है, वह विचारने लगा। भाभी? भाभी का विचार वह इस समय नहीं करेगा। आमों के बगीचे पानी से भर गए हैं। पानी के वेग से कच्ची केरियाँ टूट-टूटकर नीचे पानी के गड्ढों में गिर रही हैं।

आम पर से नीचे उतरकर वह बगीचे में चक्कर मारने लगा। जितनी कच्ची अमियाँ हाथ में आईं उसने उतनी ही खाईं।

वहाँ से खेतों को पार करता सुखपाल की बाड़ी में जा पहुँचा। माली अपनी झोंपड़ी में बैठा, चद्दर ओढ़े चिलम पी रहा था। नारंगियों के झाड़ पानी की मार से नीचे झुक गए थे। पक्की नारंगियाँ पृथ्वी को छू रही थीं। जमीन पर ही वह लेट गया और नारंगियाँ तोड़-तोड़कर खाने लगा। हाँ···कितने दिन पीछे आज इस प्रकार खाने का अवसर मिला है!

सुखपाल की बाड़ी छोड़कर वह गाँव में घुसा। गलियों में घुटनों-घुटनों पानी बह रहा था। वर्षा भी दूने वेग से गिरने लगी थी।

ओह ! उजाड़ नदी !! आज तो उसका स्वरूप प्रचण्ड हो गया होगा। थोड़ी देर में तो पानी दो-दो 'माथा' चढ़ जायगा। लाओ, उसी तरफ़ जाऊँ। गलियों में होता हुआ वह गाँव के बाज़ार में आ पहुँचा। बहुत-सी दूकानें बन्द हो गई थीं। अन्धकार छाने लगा था। सन्ध्या होने का समय हो तो आश्चर्य नहीं। पानी तो रुकने का विचार ही नहीं करता। बाज़ार में होता हुआ वह राधिका जी के मन्दिर के पास आया।

घर चलूँ ? नहीं-नहीं, अभी तो समय है। नदी का पूर देखे बिना घर नहीं जाऊँगा। बाईं तरफ़ की गली में से होकर वह पंडित गजानन के घर के पास आ पहुँचा। द्वार बन्द था। बाहर का पीपल हवा में इतने ज़ोर से झूल रहा था कि अभी-अभी वह ज़मीन पर गिर जायगा।

गाँव के साहसी युवक नदी की बाढ़ देखने आ पहुँचे थे। अघ... घ....घ...पुल तो दिखाई ही नहीं देता। पुल पर कितना पानी फिर गया है। नदी का जल सोरती के मैदान में फैल गया है और अब इस टेकरी को छूने की तैयारी में है। पुल पर तीन माथे से कम पानी नहीं होगा।

जल-प्रलय होने आया है क्या, वह विचार रहा था। नदी का ऐसा स्वरूप उसने कभी नहीं देखा था। तेज़ नागिन की तरह नदी वेग से बह रही थी। उसका पानी मिट्टी से मैला हो गया था। जहाँ देखो भँवर दिखाई देते थे। किनारे पर से टूटकर गिरे हुए वृक्षों को अपने उदर में रखती नदी वेग से प्रवाहित हो रही थी। प्रमत्त उसका पानी, किनारों से टक्कर खाता, भँवर पैदा करता, भयंकर ध्वनि से आगे भाग रहा था। नदी का यह प्रचण्ड स्वरूप देख गोपाल मुग्ध हो गया। उसके जल में अपने-आपको डाल, दूर-दूर तक यात्रा करने को उसका मन विचलित हो उठा। उसको अपनी भुजाओं पर विश्वास था। ऐसी बाढ़ में वह पहले भी तैरा है। पर पूर ऐसा ही था ? आज की बाढ़ की पहले पूर के साथ समता हो सकती है ?

नदी का यह स्वरूप अधिक प्रचण्ड है, उसका जल आज अधिक

मस्ताना बन गया है, अधिक उच्छृंखल हो गया है। इससे क्या? ऐसी बाढ़ में तैरने में हो तो सच्चा आनन्द है।

दूसरे ही क्षण वह लपककर पीपल पर चढ़ गया। अड़···ड़···ड़··· ···ड़, धम, करता पीपल जड़ से उखड़कर नदी की तरफ़ गिरा। उसी समय गोपाल वृक्ष पर से कूदा और 'धम्म' करता पानी में कूद पड़ा।

"अरे, मरा गोपाल," दो-चार युवक बोले।

"क्या सचमुच मरा?"

"अरे, ऐसे तेज़ पानी में किसकी हिम्मत है कि जीता बचे।"

"अरे यार, आज से पाँच साल पहले ऐसा पूर आया था। भोला चमार का छोकरा कहने लगा कि मैं कूदूँगा। सबने मना किया, पर वह तो कूद ही पड़ा। दूसरे दिन दस मील दूर नदी को कराड़ में फँसा हुआ उसका मुरदा हाथ लगा था।"

"तो गोपाल का मुरदा तो क्या, हड्डियाँ भी हाथ नहीं आएँगी," एक ने कहा।

"इसमें क्या शक है, कारण, कि पाँच वर्ष पहले का पूर इस वर्ष से आधा था। देखो न, इस टेकरी तक पानी आ गया है।"

पीपल की कड़कड़ाहट सुनकर पंडित गजानन बाहर आए। थोड़ी देर में अन्दर पत्नी से जाकर बोले—"सुना?"

"क्या?"

"उस गोपाल का पराक्रम!"

"हुआ क्या?"

"होगा क्या? भाई साहब चढ़े थे पीपल पर। पीपल गिरा और भाई साहब को साथ ले गया।"

अत्यन्त स्वस्थता से सती यह समाचार सुनती रही।

"मैं तो तंग आ गया हूँ इस छोकरे से। किसी दिन कुछ-से-कुछ कर डालेगा। उस दिन रात्रि में भी।"

"कौनसी रात्रि?"

"हूँ-हूँ···कुछ नहीं, कुछ नहीं। वह तो कहता हूँ राधेबाबू और माताजी ने उसे घूमने-फिरने को मना कर रखा है। फिर भी उसके पैर नहीं टिकते घर में।···हरि-हरि, क्या होगा अब ?"

"होगा क्या ? उसे तैरना नहीं आता क्या ?" पत्नी ने पूछा।

"तैरना नहीं आता क्या ? अरे इस पूर मे किसका साहस है कि तैर सके ? आया है बड़ा तैरने वाला," हाथ मटकाकर पंडितजी बोले।

सन्ध्या तक गोपाल घर में नहीं आया इससे भाभी की चिन्ता बढ़ने लगी। जाने क्यों भाभी को लगा, कि आज गोपाल अवश्य भान भूल जायगा, अपनी प्रतिज्ञा को भूल जायगा और ऐसी भयंकर वर्षा मे पहले की तरह घूमने चल निकलेगा। रात्रि होने लगी तब भाभी की चिन्ता और बढ़ गई। चन्दा भाभी का मुख देख उनकी चिन्ता को समझ गई। उसके मन में भी न जाने क्या-क्या हो रहा था। ऐसी भयंकर रात्रि में कौन घर से बाहर पैर धरने का साहस कर सकता है ? पर गोपाल घर में नहीं था। एक अद्‌भुत व्यथा से उसका दिल दुखने लगा।

छप्पर पर तड़ातड़ वर्षा की धाराएँ पड़ रही थीं, हवादानों और मोरियों में घुमकर पवन विचित्र नाद कर रहा था। कभी-कभी हवा के झोंके के साथ आसपास के वृक्षों के पत्ते घर के भीतर दौड़ आते थे।

पत्नी ने राधे बाबू से आकर कहा—"सुना ! गोपाल अभी आया नहीं। कुछ करो न, बैठे-बैठे कहाँ तक हुक्का गुड़गुड़ाया करोगे ?"

"नहीं आया ? क्यों नहीं आया ? पाठशाला से नहीं आया ? कब का नहीं आया ? किसलिए नहीं आया ? ऐसा हुआ ही क्यों ? पर कारण क्या ?" ऐसे-ऐसे एक ही प्रकार के अनेक प्रश्न पूछकर पतिदेव ने सारी बात समझने का प्रयास किया।

उसी समय फटी छतरी में अपने शरीर को छिपाते, हाथ में लालटेन लिये पंडित गजानन वहाँ आ पहुँचे।

"सुना न ?" भीतर घुसते ही वे बोले।

"क्या ?"

"उस बदमाश गोपाल की करतूत ?"

भाभी यह सब सुन रही थी ।

"हूँ···अ ? क्या पराक्रम ? क्या करतूत ?"

"भाई साहब ऐसे तूफ़ान में और बरसात में चढ़े थे अपने घर के पास वाले पीपल पर ।"

"हाँ··अ···"

"चढ़ते ही पीपल जड़ से उखड़ 'अर र···र····धम्म' करता गिरा नदी में ।"

"एँ ? फिर ?" राधे बाबू के विस्फारित नेत्र पूछने लगे ।

"फिर क्या ? इतना भी समझते नहीं । जाओ ढूँढ़ो उसे," मन्द स्वर में घूँघट में से ही भाभी ने कहा ।

"हाँ··हाँ, इसीलिए तो मैं आया हूँ । जाऊँगा नहीं तो करूँगा क्या ? मैं अकेला व्यक्ति क्या करूँ ? चलो राधे बाबू ।"

"कहाँ ?"

"कहाँ ? ढूँढ़ने ।"

"इस रात में ?"

"और कुछ उपाय है ?"

"नहीं, पर ढूँढ़ेंगे कहाँ ?"

"कहीं तो ढूँढ़ेंगे ही न ?" पंडितजी विद्वत्तापूर्वक बोले ।

"और नहीं तो, कहीं तो ढूँढ़ेंगे ही न ! बिचारा कैसे गिर गया ?" सहानुभूति बताते आँखें फाड़कर राधे बाबू बोले ।

दूसरे दो-चार आदमियों को लेकर वे नदी के किनारे, बड़ के आस-पास, श्मशान तक ढूँढ़ आए, पर गोपाल का कुछ पता न लगा । आधी रात बीत चुकी थी । वृष्टि का ज़ोर भी धीमा पड़ गया था । कभी-कभी पानी फिर से गिरने लगता था ।

घर आकर राधे बाबू ने जब बताया कि गोपाल का कहीं पता नहीं,

तब भाभी बिस्तर में पड़ी फूट-फूटकर रोने लगी, और गूँगी अपनी फटी गुदड़ी में पड़ी ईश्वर से प्रार्थना करने लगी, "सब मंगल करना प्रभो !"

पर गुदड़ी में पड़े-पड़े उसे दूसरे क्या विचार आते थे ? उसे अपनी माता याद आती थी। अपने जन्म के सम्बन्ध में पिता ने जो विचित्र गूढ़ वचन कहे थे वे उसे याद आ रहे थे। आज यहाँ आए पाँच-साढ़े-पाँच महीने हो गए हैं। उसके शरीर और मन में अद्भुत परिवर्तन हो रहा है। वह किससे कहे ?

करवट बदल वह बिछौने में पड़ी रही। गोपाल की याद आते ही उसकी आँखों में से आँसू बहने लगे।

राधे बाबू थक गए थे। थोड़ी देर में ही उनकी नासिका गाना गाने लगी। पर भाभी को किसी तरह भी नींद नहीं आई। भाभी अभी गोपाल वाले घर में सोई हुई थीं। सामने के घर में चन्दा और मिश्राणी जी सोई थीं।

रात के दो बजे किसी ने द्वार खटखटाया। चन्दा जाग रही थी। एकाएक दरवाजा खोलकर देखती है तो गोपाल कीचड़ से सना, फटे कपड़े सामने खड़ा था। यह अवस्था देख चन्दा घबड़ा गई। एकाएक उसका हाथ पकड़कर भीतर ले गई।

पानी बिलकुल बन्द हो गया था। चन्दा ने नहाने के लिए पानी निकाला। बिना बोले-चाले गोपाल ने स्नान कर लिया, धोती बदली। जब वह नहा-धोकर निपटा तब ठंड से उसके दाँत 'कट-कट' बज रहे थे।

चुपचाप चन्दा यह दृश्य देखती रही। एक क्षण गोपाल भी स्तब्ध होकर खड़ा रहा। फिर बाहर आकर सामने के घर का दरवाज़ा खड़खड़ाने लगा।

"कौन ?" भाभी ने पूछा।

"गोपाल।"

भाभी ने द्वार खोला। दरवाज़ा खुलते ही गोपाल भाभी के चरणों में गिर पड़ा—"क्षमा करना भाभी, तुम्हारे वचन···"

भाभी की आँखों में आँसू थे। वह एक शब्द भी बोल न सकीं। गोपाल भी कुछ न बोला। चन्दा यह दृश्य देखती रही।

भीतर जाकर गोपाल अपनी कोठरी में बिछौने पर पड़ गया। भाभी अपने बिस्तर पर पड़ी न जाने कब तक रोती रही।

पर उसी रात को, घर जाकर पंडित गजानन ने पत्नी को समाचार दिया कि गोपाल का कहीं भी पता नहीं। वह तो अब पच्चीस-तीस मील दूर बह गया होगा और किसी कगार में टकराकर······तब पत्नी ने कहा—

"ऐसी अमंगल बातें मत करो। उसे कुछ भी होने का नहीं। वह क्षेम-कुशल लौटेगा।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं? अवश्य आवेगा। तुझे उसके लिए इतनी लगन है फिर···"

"लगन है, स्नेह है, इसी से तो कहती हूँ—उसे कुछ नहीं होने का।"

"सच है, ठीक बात है, पर पाँच वर्ष पहले भोला चमार का छोकरा···"

"भोला चमार के छोकरे की बात आज रात्रि में मत करो।"

"करूँ, करूँ, तुझे दुख होगा क्यों?

"होगा क्यों नहीं? अच्छा सो जाओ।"

पंडितजी थोड़ी देर में खर्राटे भरने लगे। सती नदी के पूर के साथ मानसिक यात्रा करने लगी। उसे लगा, गोपाल को कुछ नहीं हो सकता।

जब गोपाल घर आया तब सती के चित्त को शान्ति मिली और फिर वह भी गहरी निद्रा में डूब गई।

आठ

उसी रात को गोपाल को खूब ठंड लगकर बुखार हो आया। दूसरे दिन जुकाम के साथ-साथ खांसी भी आने लगी और उसका ज्वर बढ़ता गया। भाभी अत्यन्त चिन्तित हो गईं। पति के पास जाकर बोलीं—

"क्या बैठे हो इस तरह ?"

"क्यों ?" विस्फारित नेत्र कर उन्होंने पूछा।

"दवा नहीं लानी है ?"

"दवा ? किसके लिए ?"

"गोपाल के लिए।"

"गोपाल को क्या हुआ है ?"

"तुम घर में भी रहते हो कि नहीं ? उसी दिन से ज्वर आता है, उतरता ही नहीं।"

"उतरता ही नहीं ! मुझसे क्यों नहीं कहा ? वाह !"

"भूल हुई जो नहीं कहा। अब तुम दवाखाने जाकर दवा ले आओ।"

"अभी ही ले आऊँ ?"

"नहीं तो कब लाओगे ? फिर दफ्तर नहीं जाना है क्या ?"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं ? जाना तो पड़ेगा ही न ?"

"तो फिर जल्दी तैयार होकर जाओ न।"

"अच्छा, अच्छा, पर तुम ज़रा नाश्ता और लस्सी···"

"अभी भेजती हूं।"

"आज अधिक भूख नहीं, थोड़ा-बहुत होगा तो काम चल जायगा। पर वे गुलाब जामुन अगर हों तो दो-चार···"

पत्नी पति के खाने के प्रेम को जानती थी, इससे उसको इस

वक्त भी हँसी आए बिना न रही। पर गोपाल का मुख देखकर उसकी हँसी दूसरे ही क्षण उड़ गई। दो दिन के ज्वर में ही चेहरा कैसा फीका पड़ गया है। आज पाँच वर्ष से गोपाल इसी घर में रहता है, पर कभी उसका सिर तक नहीं दुखा।

गोपाल बिस्तर में पड़ा-पड़ा विचारता है—कभी नहीं हुआ, आज ही क्यों बीमार हो गया? जीवन के इन अठारह वर्षों में उसे कभी कोई रोग नहीं हुआ। नदी में तो ऐसे अनेक बार वह पड़ा है। किसलिए आज ज्वर आया है?

चन्दा दूध लेकर जब उसकी खाट के पास आई तब उसके नेत्र बन्द थे। चन्दा जैसी-की-तैसी खड़ी रही। जब उसने आँखें खोलीं तब दूध रखा।

“भूख नहीं,” उसने कहा।

“आँ···आँ···” भाभी ने पीने की आज्ञा दी है, गूँगी ने अपनी भाषा में समझाया।

भाभी की आज्ञा! “अच्छा!” वह दूध पी गया। पर पीते ही उल्टी हो गई। चन्दा खाट पर पैर रखकर उसकी पीठ थपथपाने लगी। फिर पानी ला उसका मुँह धुलाया और राख डालकर सब साफ करके चली गई।

गोपाल यह देखता रहा। भाभी और चन्दा दोनों उसकी कितनी सेवा करती हैं? और वह?

राधे बाबू दवा लेकर आए और बोले—

“लो···हूँ···हूँ···यह दवा—कहो तो डाक्टर साहब को भी बुला लाऊँ?”

पत्नी ने कहा—“नहीं, हाँ शाम को बुला लाना।”

“अच्छा···अच्छा तो अब भोजन कर लूँ। दफ्तर जाने में देर हो रही है।”

“अच्छा।”

"मिश्राणीजी ने चन्दा को आसन बिछाने की आज्ञा दी। चन्दा ने आसन बिछाया, सामने पट्टा रखा और फिर मिश्राणी जी ने थाल में रसोई परसी। जब थाल सामने आया तब अत्यन्त प्रसन्न होकर राधे बाबू बोले—

"वाह! मिश्राणीजी वाह! आज कटहल का शाक बनाया है? वाह! और यह? वाह! बूँदी का रायता! और यह? पोदीने की चटनी! वाह! वाह!! गरमी के दिनों में पोदीने की चटनी! वाह!! बस लू के लिए रामबाण इलाज, क्यों मिश्राणी जी?"

"जी" मिश्राणीजी हँसती-हँसती बोलीं; मन में कहने लगीं—"अभी तो बरसात है।"

"वाह···और दाल? उड़द की है न? वाह! उड़द की दाल में जितना घी डालो उतनी अच्छी लगती है, क्यों ठीक है न मिश्राणीजी?"

"जी" फूली हुई रोटी पर घी चुपड़ती हुई वह बोली।

"रोटी पर घी किसलिए चुपड़ती हो मिश्राणीजी, उतना घी तुम मेरी दाल में ही डाल जाओ न?" और फिर चारों ओर दृष्टि डाल, पत्नी उपस्थित नहीं, यह देख बोले—

"मिश्राणीजी!"

"जी!"

"उस घी को जरा ठीक तौर से गरम कर जरा दाल में तो डाल जाओ!"

"दाल में डाल दिया है।"

"हाँ-हाँ,डाला है! वाह-वाह कैसी बढ़िया दाल है! पर देखो न, घी ज़रा कम है। तुम थोड़ा-सा और घी···"

"जी···घी आजकल···"

"यह तो चला ही करता है···नहीं होगा तब नहीं खाएँगे, तुम तो···"

"जी···"

"क्या 'जी' ? लाओ न !"

"लाई ।"

"वाह-वाह, वाह ! क्या तुम्हारे हाथ की दाल बनती है ?"

"दाल तो बहूजी ने बनाई है," मिश्राणी बोलीं ।

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, तुम्हारे हाथ-जैसी दाल रसोई···

"जी !'

"वाह खूब कड़काया है तुमने घी !" कटोरी लेकर आती हुई मिश्राणीजी को देखकर बोले ।

"हाँ जी !"

"अच्छा, अच्छा, डाल दो तो दाल में, वाह !" और पत्नी के पैरों की आहट सुनते ही बोले—"वाह कैसा तरीदार शाक बना है ? मिश्राणी जी, रोटी चुपड़नी आज से बन्द कर दो, घी का भाव आजकल बहुत चढ़ता जा रहा है ।"

"जी !" मिश्राणीजी हँसी छिपाती बोलीं ।

"अभी तक तुमने जीमना शुरू नहीं किया ?"

"ओह ! यह जीम लिया न !" जल्दी-जल्दी खाते राधे बाबू बोले ।

और भोजन कर जब पति चले गए तब पत्नी बोली—"मिश्राणी जी, माँजी जाने कब आवेंगी ? मुझसे तो यह सहन नहीं होता भई ।"

"लो, इसमें घबराती क्यों हो बहू ? सब ठीक हो जायगा ।"

पर अभी गोपाल स्वस्थ हो नहीं पाया था कि भाभी को बुलाने का पत्र आ गया । माताजी वहाँ जाकर तेज़ ज्वर में ग्रस्त हो गई हैं, देवरानी की स्थिति भी गम्भीर है, बहू को जल्दी भेज दो ।

यह समाचार सुनकर भाभी की आँखों से आँसू बहने लगे । उस दिन वे सन्ध्या को गोपाल की खाट पर बैठी थीं । उनकी आँखें रो-रोकर लाल हो गई थीं ।

"भाभी !" गोपाल ने पुकारा ।

"हाँ भाई ।"

"आँखें क्यों लाल हैं ?"

"कुछ नहीं भाई।"

"तब भी ?"

भाभी की आँखों से फिर से अश्रु-धार बहने लगी।

"मुझसे नहीं कहोगी भाभी ?"

"तेरी तबीयत ठीक नहीं और मुझे जाना···"

"कहाँ जाना है भाभी ?"

"माँ के पास !"

"क्यों ?"

"वे भी बीमार हो गई हैं और देवरानी जी की स्थिति भी चिन्ताजनक है। मुझे जाना पड़ेगा गोपाल !"

"ओह ! इसमें रोती हो ? भाभी, मुझे कुछ नहीं होने का। मैं तो ठीक हो जाऊँगा दो दिन में। तुम चिन्ता किसलिए करती हो ? जाओ खुशी से।"

"पर मन किसी प्रकार मानता नहीं।"

"अवश्य मानेगा भाभी, तुम्हें जाना ही पड़ेगा।"

"पर तुझे···"

"मुझे दो दिन में आराम हो जायगा। फिर घर में मिश्राणीजी हैं, चन्दा है, चिन्ता किस बात की ?"

इसी समय पंडित गजानन सन्ध्या करके गाते थे—

'तीरथ को सब फिरे, देव-पूजा करे।
वासना ना भरे···ए···ए···ए···॥'

और सती उनके मोटे राग का अनुसरण करने का प्रयास कर रही थी।

"मैं जाती हूँ;" एकाएक वह बोली।

"कहाँ ?"

"राधे बाबू के यहाँ।"

"क्यों ?"

"गोपाल को देखने। उसे सख़्त ज्वर आता है।"

"अच्छा-अच्छा, पधारो।"

सती जब घर आई तब गोपाल ने अन्तिम वाक्य कहा था—"चन्दा है···चिन्ता किस बात की ?"

"और सती भी है, चिन्ता किस बात की ?" अन्दर आकर सती बोली।

सती को देखकर भाभी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। आदर से बैठाकर बोलीं—

"क्या करूँ ? मुझे तो जाना ही पड़ेगा कल की गाड़ी से। तुम हो, इससे चिन्ता नहीं, सँभाल रखना।"

"हाँ मैं हूँ, चिन्ता किस बात की," सती ने कहा।

चन्दा मौन वहाँ खड़ी थी। सती के सौन्दर्य को देखकर वह मुग्ध हो गई। सती को उसने बहुत बार देखा है, पर आज वह कितनी सुन्दर लगती है ?

"भाभी, मैं बैठी हूँ, काम हो तो जाओ न।"

"अच्छा," कहकर भाभी अपने अन्य कामों में लग गई। गोपाल की चारपाई पर बैठकर उसका माथा दबाते हुए सती ने कहा—"क्यों, सिर अधिक दुखता है ?"

गोपाल सहज हँसा।

"और पैर भी ?"

गोपाल ने जवाब नहीं दिया। फिर सती चन्दा की ओर देखकर बोली—"यहाँ आ।"

चन्दा पास आई।

"पैर दबा तो ?"

"आँ-आँ" करके चन्दा पैर दबाने लगी। गोपाल ने आनाकानी की, पर सती के सामने उसकी चली नहीं। नेत्र बन्द करके पड़े रहने की आज्ञा उसे मिल गई।

चन्दा की तरफ़ एक क्षण सती देखती रही।

इन पाँच-साढ़े पाँच महीनों में चन्दा का शरीर बिलकुल स्वस्थ और सुडौल बन गया था। उसने पूछा—

"क्यों अच्छा लगता है यहाँ ?"

चन्दा हँस दी।

"भाभी जा रही हैं। मैं भी चौबीसों घण्टे यहाँ नहीं रहूँगी। गोपाल को कुछ कष्ट मत होने देना। क्या समझी ?"

चन्दा ने सहज हँसकर मानो उत्तर दिया—अच्छा।

और जब दूसरे दिन भाभी चली गई तब सारे घर का भार चन्दा के ऊपर आ पड़ा। सती के वचनों को हर प्रकार पालने का प्रयत्न करती हुई चन्दा अहर्निश गोपाल की सेवा में मग्न रहती। प्रातःकाल जल्दी उठकर घर का सारा काम-काज निपटा वह गोपाल की खाट के पास आ बैठती। दिन में एक बार सती भी आ जाती, पर उसकी सेवा का सम्पूर्ण भार तो पड़ा चन्दा पर और वह उसे सहर्ष बजाती रही।

वर्षा के दिन, घनघोर अँधेरी रात। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। गड्ढों में मेंढक टर्र-टर्र का गीत अलाप रहे थे। पुरानी दीवारों की दरारों में छिपे हुए झींगुर झीं-झीं-झीं कर रहे थे। वर्षा का यह सौम्यस्वरूप था। उसमें भयंकर गर्जना-तर्जना नहीं थी, भयानक तूफ़ान नहीं था और पानी की झड़ी भी नहीं थी। मन्द-मन्द बरसता मेह मोरों को उन्मत्त बना रहा था और मेंढकों को भी संगीतमय बनने को प्रेरित करता था। कभी-कभी इधर-उधर मेघ-खंड की लरजन-गरजन और बिजली की चमक भी हो उठती थी। ठण्डी हवा चल रही थी।

गोपाल बिछौने में पड़ा था। एकाएक बाल्यावस्था में सुना हुआ एक गीत याद आया—

"दादुर मोर पपैया रे बोले···"

आज रात्रि में भी दादुर और मयूर बोल रहे हैं। बचपन में कथा

सुनी थी। वृन्दावन में ऐसे ही मोर बोलते होंगे, मेघ-गर्जना होती होगी, दादुर बोलते होंगे और वट-वृक्ष के नीचे कृष्ण वंशी बजाते होंगे। गायें रँभाती-रँभाती वहाँ दौड़ती आती होंगी, यमुना का काला नीर उन्मत्त बना दौड़ता होगा···और वह किशोरवयस्का राधा? घर में से भागकर वह कृष्ण को मिलने आई होगी। दोनों बातें करते होंगे—

"कृष्ण! क्यों बजाई बाँसरी?"

"तुझको बुलाने के लिए राधे!"

"मुझे बुलाने?"

"हाँ, तुझे।"

"बुलाया किसलिए?"

"खेलने।"

"क्या खेलोगे?"

"तू कहेगी सो।"

और फिर कृष्ण और राधा ताली दे, आँखों पर पट्टी बाँध खेलते हैं। दूसरे बाल-गोपाल भी आ पहुँचते हैं। अन्य किशोरियाँ भी आती हैं और फिर तो वट-वृक्ष पर चढ़कर सब क्रीड़ा करते हैं।

कितना सुखी जीवन है इन गोपालों का?

कृष्ण कहते हैं—"देखो उस यमुना को।"

"प्रमत्त बन रही है।"

"कौन कूदेगा कालिन्दी में?"

"कोई नहीं," कृष्ण का हाथ पकड़कर राधा कहती है।

"वाह! तू भी कूद मेरे साथ।"

"न भई, किसी को कूदना नहीं," लाड़ करती राधा कहती है। पर कृष्ण किसी की नहीं मानते। वट-वृक्ष की ऊँची-से-ऊँची शाखा पर से यमुना में कूद पड़ते हैं।

और गोपाल यह दृश्य देख चकित होता और बोल उठता है—"वाह! कृष्ण, वाह!!"

"क्या है ?" चन्दा बोल उठी ।

गोपाल ने नेत्र खोले···आह ! यह न है वृन्दावन, न यहाँ है वंशीवट, न यमुना, न राधा, न कृष्ण···पर घर में दीपक टिम-टिम-टिम जल रहा है, मेंढक टर्रा रहे हैं और बीच-बीच में मोर बोल उठते हैं और राधे के बदले है चन्दा गूँगी ।

दीपक के मन्द प्रकाश में चन्दा सुन्दर लगती थी । उस रात की गूँगी में और इस गूँगी में कितना अन्तर है ? शीत से काँपती, भूख से व्याकुल, फटे हाल यही बाला उसके समीप नाव में बैठी थी । आज वह हृष्ट-पुष्ट दिखाई देती है । बिलकुल स्वस्थ और सशक्त हो गई है··· पर उसका मुख ? सुन्दर तो है, पर उसमें कोई अभेद व्यथा भरी हुई है । उसकी भूखी आँखें ! यही चन्दा इसी घर में इतने दिनों से रहती है, पर उसने उस ओर इस तरह देखने की जिज्ञासा कभी नहीं बताई । उसके विषय में कुछ भी जानने की परवाह नहीं की, उसके हृदय तक पहुँचने की चेष्टा नहीं की ।

व्याकुल नेत्रों से चन्दा उसके सामने देखती रही । उसकी आँखें पूछती थीं—'क्या हुआ ? क्या बोलते थे, किसलिए ऐसा बोलते थे ?'

किशोरी राधा ! गोपाल विचार रहा था । उसके नेत्रों ने मानो चन्दा को आह्वान किया । चन्दा ने अपना हाथ उसके मस्तक पर रखा और मानो कहने का प्रयत्न करने लगी···

"अभी तुम स्वस्थ नहीं हो, बिलकुल ठीक कब हो जाओगे ?" गोपाल ने धीरे से अपना हाथ उसके हाथ पर रखा । फिर उसका हाथ अपने हाथ में खींच उसे खाट पर बैठने को कहा ।

चन्दा खाट पर बैठ गई । चुपचाप बैठी वह उसका माथा दबाती रही । कब तक वह इसी तरह बैठी रही ? बाहर रिमझिम-रिमझिम बूँदें गिर रही थीं । कभी हवा वेग से चलती तब घर के ऊपर के खपरैल खड़खड़ा उठते, चन्दा क्या विचारती थी ? उसके हृदय में क्या द्वन्द्व चल रहा था ?

उसे वह रात याद आई। भूख से व्याकुल, कष्टों से त्रासित, माता के वियोग में मूढ़ बनी, श्मशान में पड़ी वह मौत का आह्वान कर रही थी। न जाने कहाँ से एकाएक यह गोपाल आ पहुँचा? किसलिए नाव में बैठ वह उसके साथ, बिलकुल अकेली, उस अन्धेरी रात में, नदी में यात्रा करती रही? भूख मिटाने के लिए ही तो। और फिर वे सारी घटनाएँ उसके नेत्रों के सम्मुख नाचने लगीं।

यही वह गोपाल है। ज्वर से इसका शरीर जल रहा है, हृष्ट-पुष्ट इसका शरीर क्षीण बन गया है और फिर···सवेरे के साढ़े चार बजे··· ओह! वह काँप उठी। उसका शरीर लता की तरह काँप उठा।

"क्यों?" गोपाल ने उसके सामने देखा।

उसकी आँखों के कोनों में पानी था।

गोपाल ने उसे देखा, पर कुछ बोला नहीं।

चन्दा विचारने लगी—'उसका क्या होगा? उसके शरीर में दूसरा जीव प्रवेश पा गया है, इसमें शंका नहीं; पर यह बात, यह व्यथा वह किससे कहे? उसका क्या होगा?' और यह विचार आते ही उसकी आँखों में से आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने गोपाल की तरफ़ एक कातर दृष्टि फेंकी और दूसरे ही क्षण वह गोपाल की खुली छाती पर अपना सिर रखकर बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लगी।

गोपाल एक क्षण मूढ़ की तरह पड़ा रहा। उसे सती का वचन याद आया—'समस्त विश्व स्नेह पर अवलम्बित है। निराधार बाला, जिसका इस संसार में कोई नहीं, आज व्यथा से पीड़ित, उसका स्नेह चाहती है। उसने अपना हाथ उसके मस्तक पर रखा और बहुत देर तक चन्द्रा उसी तरह उसकी छाती पर पड़ी रही।

चन्द्रा के हृदय में क्या-क्या विचार आ रहे थे? इस गोपाल को वह हृदय से चाहती है। पर उसे वह स्वीकार करेगा? जब उसे मालूम होगा कि वह तो त्याज्य है—वह अपवित्र है—वह उसके प्रेम के योग्य नहीं है, तब उसका क्या होगा? यह एक ही क्षण उसके लिए कितना

महान् है ? वह अपने-आपको नहीं रोक सकी। अपना मुँह गोपाल के मुख के पास लाकर, अपनी दोनों भुजाओं से उसके शरीर को जकड़ वह उसी तरह पड़ी रही।

दूसरे क्षण गोपाल ने उसे अपनी भुजाओं में लपेट लिया। न जाने कब तक दोनों वैसे ही पड़े रहे।

रात्रि आगे सरक रही थी। कभी-कभी मेघ-गर्जना हो जाती थी। मेंढक 'टर्र-टर्र' करते थे। मोर आम्र-वृक्षों पर केकारव करके मेघों को निमन्त्रित करने में लगे थे···और इस कोठरी के दोनों जीव, एक-दूसरे के स्नेह में शराबोर बन रहे थे। गोपाल के नेत्र बन्द थे। कालिन्दी का गहन जल-मस्त बना दौड़ रहा था। कृष्ण और उनके मित्र इस तूफ़ानी जल में तैर रहे थे और अपनी सहचरियों की तरफ़ देख-देख उन्हें चिढ़ा रहे थे।

नौ

भाभी को गये दो मास से अधिक हो गए हैं। गोपाल की तबीयत अभी बिलकुल ठीक नहीं हुई। उसे अपनी इस बीमारी के लिए आश्चर्य होता है। इतनी लम्बी बीमारी उसने कभी भोगी नहीं। भाभी बहुत दूर चली गई हैं। सती आकर उसकी खबर लेती है। जाने कब पूरी तरह से स्वस्थ होगा ?

राधे बाबू भाभी को छोड़कर आ गए हैं और अपने काम में मस्त रहते हैं। कभी-कभी आकर गोपाल का समाचार पूछ लेते हैं—"क्यों गोपाल, हँ-हँ···ठीक है न ?"

मन्द हँसकर गोपाल उत्तर देता है—"हाँ।"

दोपहर का समय था। आज बादल बिखर गए थे और सूर्य का ताप पृथ्वी पर पड़कर उसको अधिक प्रफुल्लित बना रहा था। गोपाल को आज किसी प्रकार अच्छा नहीं लगता था।

इसी समय सती आई।

"क्यों ?" उसने अन्दर आकर हँसते-हँसते पूछा।

गोपाल मुस्कराया।

"खाट पर पड़ा रहना अच्छा नहीं लगता न ?"

"हाँ जीजी, अब इस प्रकार अच्छा नहीं लगता।"

"तो क्या अच्छा लगता है ?"

गोपाल मुस्करा दिया।

"तुझे क्या भाता है, यह मैं जानती हूँ," सती बोली।

गोपाल सती का मुख देखता रहा।

"वन-वन में, पर्वतों-पहाड़ियों पर भटकने का मन होता है न ?"

"हाँ जीजी !"

"और फिर से नदी में पड़कर तैरने का मन होता है न ?"

फिर गोपाल हँसा।

"पर भाई, भाभी के वचन नहीं पाले, इससे यह ज्वर आया। दूसरी बार फिर उसकी आज्ञा की अवहेलना की तो जाने क्या हो जाय, खबर है ?"

"हाँ, खबर है।"

"क्या ?"

"यमराज के घर पहुँच जाऊँ।"

"ऐसा ?"

"हाँ।"

फिर दोनों चुपचाप बैठे रहे। सती का हाथ अपने हाथ में लेकर गोपाल सती का मुख देखता रहा।

"जीजी !"

"हाँ ।"

"तुम यहीं रहो तो ?"

"तो फिर तुम्हारे पंडितजी की सेवा कौन करेगा ?"

गोपाल निरुत्तर रहा ।

"चन्दा नहीं अच्छी लगती ?" सती ने हँसकर कहा ।

"अच्छी लगती है ।"

"तो फिर ?"

"कहाँ चन्दा, कहाँ जीजी ?"

"ऐसा ?" सती हँसकर बोली ।

सन्ध्या से ही गोपाल को अधिक बेचैनी मालूम होने लगी । और दिनों की अपेक्षा आज ज्वर भी अधिक था। व्यथा से वह बारम्बार अपने हाथ-पैर पछाड़ता था । काम से निवृत्त होकर जब चन्दा गोपाल के पास आने लगी तब मिश्राणीजी बोलीं—

"सारा काम कर लिया ?"

चन्दा ने सूचित किया—"हाँ ।"

"आजकल तेरा चित्त कहाँ घूमता रहता है ? गरम पानी के घड़े में पानी भरा ? सवेरे नहाने को पानी गरम नहीं करना है ?"

चन्दा को याद आया कि उसने घड़े में पानी नहीं भरा है । वह पीछे लौटी और पानी भरकर चलने लगी ।

"पर सुनती है ?"

गूँगी खड़ी रही ।

"मिट्टी के तेल की बोतल खाली हो गई है । भर जा न !"

मिश्राणीजी आजकल इस गूँगी से क्रोधित रहने लगी थीं । चन्दा के गोपाल के प्रति स्नेह से वे अपरिचित नहीं थीं, और अब—अब तो यह राँड जब देखो तब उस कोठरी में ही घुसी रहती है । यह कोई अच्छा काम है ? वह खुद भी स्त्री है, अभी उसकी उम्र भी तो

कोई अधिक नहीं—पैंतीस-छत्तीस की; पर वह कितने संयम से रहती है। कितनी ही बार पुत्तूमल और मोती ने उससे प्रेम की भीख माँगी है, पर उसने उन सब प्रार्थनाओं को ठोकर मार दी है। और इसे तो देखो···और मिश्राणीजी की आँखें बहुत बार चन्दा के सम्पूर्ण शरीर को बेधकर—उसका सांगोपांग निरीक्षण करने का प्रयत्न करती रहतीं····और····अब तो उनकी शंका अधिक दृढ़ होने लगी है···ना बाई····दाल में काला है कुछ अवश्य····मरे रे···यह छोकरी घर को कलंक तो नहीं लगावेगी···फिर सोते समय अपनी इस शंकाशील दृष्टि के लिए उनको पश्चात्ताप होता और वे कहतीं···छिः छिः ऐसा हो सकता है····हो भी तो मुझे क्या ?···मरे रांड····पड़े चूल्हे में, इसमें मेरे बाप का क्या जाता है। फिर दूसरे ही क्षण वह सोचतीं—ऐसा निभ सकता है ? इस घर में रहकर ऐसे नीच कर्म कैसे निभ सकते हैं ? और अगर बात सच्ची निकले तो ?···हे भगवान्····इस घर को कलंक लग जायगा···लोग क्या कहेंगे ? उँगली उठा-उठाकर इस घर को बदनाम करेंगे····माताजी को मालूम होगा····दूध पिलाकर इस नागिन को कहाँ से पाल लिया ?

पर गोपाल इसके लिए उत्तरदाता है, यह बात मिश्राणीजी भी मानने को तैयार नहीं थीं····तो फिर इसके लिए जवाबदेह कौन ? वे विचारने लगतीं। और देखो न रांड को शरम ही कहाँ है ? जब देखो तब उसकी कोठरी में ही घुसी रहती है।

और फिर—"हे भगवान्—यह सब झूठ ही हो—मेरी आँखें झूठी ठहरें।" ऐसा करके वह सो जाने का प्रयत्न करतीं।

जब चन्दा गोपाल की कोठरी में आई तब वह अत्यन्त बेचैन बना हुआ बिस्तर में लोट रहा था और हाथ-पैर पछाड़ रहा था।

चन्दा उसके बिछौने पर बैठ गई और उसका माथा तथा पैर दबाती रही। बहुत रात तक उसे नींद नहीं आई। बारम्बार वह चन्दा से सो जाने को कहता, पर वह किसी प्रकार वहाँ से उठी नहीं।

अधिक रात बीत जाने पर उसकी आँख लग गई।

आज सवेरे के पाँच बज गए हैं, तब भी चक्की की आवाज़ घर में सुनाई नहीं देती। मिश्राणीजी की नींद आज कब की उड़ गई है। कितने बजे हैं, वे विचारने लगीं। बिछौने में से ही उन्होंने आँगन में से आकाश की ओर दृष्टि डाली—ओह मेरी माँ! साढ़े चार या पाँच का समय है। उठ बाई उठ! पर आज वह गूँगी अभी तक क्यों नहीं उठी? रांड को हो क्या गया है? वे वहाँ से उठकर बराण्डे में, जहाँ चक्की रखी थी, गईं। लो, यहाँ भी कोई नहीं अब तक?

राँड सोई जान पड़ती है, पर बिस्तर में तो है नहीं। वह उस घर में क्या करती है? वे चलीं···सामने के घर में आईं····और गोपाल की कोठरी में पहुँचीं तो····

"ओह मेरी माँ! यह तो देखो!! खाट में गोपाल के पैरों पर माथा रखकर राँड सो रही है, छिः बेशरम! यह बात है···और फिर?"

"अरी ओ मुई कमजात राँड! बाज़ नहीं आती···"

एकाएक गूँगी की नींद उड़ गई। देखती है तो सामने खड़ी हैं मिश्राणीजी···उनकी लाल आँखें मानो उसे भस्मीभूत कर देना चाहती हैं। हड़बड़ाकर वह खाट पर से उठ खड़ी हुई, गोपाल भी एकदम जाग गया।

"क्या है?" वह पूछ उठा।

"क्या है? छोकरी को बगल में लेकर सारी रात सोते शरम नहीं आती और पूछते हो क्या है?"

गोपाल इसका कुछ भी अर्थ नहीं समझ सका। दूसरे ही क्षण उसके कानों में शब्द पड़ने लगे—"यह नहीं निभ सकती राधे बाबू! ऐसा अधर्म इस घर में नहीं चल सकता। मुझसे नहीं रहा जायगा अब इस घर में···"

यह चिल्ल-पुकार सुन राधे बाबू आँखें फाड़ एकदम वहाँ आ

पहुँचे और बोलने लगे—

"है क्या पर ? शोर किसलिए कर रही हो सवेरे-सवेरे । नींद में से···कुत्ता गिर गया या बिल्ली ?"

"कुत्ता भी नहीं और बिल्ली भी नहीं···घर में मरी है डाकिन"

"डाकिन ? कहाँ है···कहाँ है ?"

"यह रही—देखते नहीं !" गूँगी की तरफ संकेत कर मिश्राणीजी बोलीं ।

"ओह, ओह !" आँखें मसलते राधे बाबू बोले—"इसमें चिल्ल-पों क्यों मचाई है ? सवेरे के समय मेरी नींद ।"

"तुमको तो नींद की पड़ी है । मुझसे इस घर में नहीं रहा जायगा । हाँ··ऐसा व्यभिचार···"

"है क्या पर ?" आँखें फाड़कर राधे बाबू ने पूछा ।

"है क्या ? पूछो न इस सेठानी से···कहाँ सो रही थी यह ?"

और जब मिश्राणीजी ने अपनी कटाक्षयुक्त वाणी में राधे बाबू को सारी बातें समझाईं तब भी राधे बाबू नहीं समझे और पूछने लगे, "इसमें हुआ क्या ? नींद···"

"तुम्हारी तो बुद्धि···"

"क्या कहा मेरी बुद्धि···" आँखें खोलकर वे बोले, "और फिर एकाएक अक्ल का प्रदर्शन करते हों, इस प्रकार बोले—"हाँ ठीक है···इस तरह सोई ही क्यों ? कहीं सोने की और जगह नहीं थी । यह क्या ? ऐसा कैसे हो सकता है ?" और फिर "खैर चलो, छोड़ो इस चर्चा को—सो जाओ ।" कहकर वह फिर अपनी चारपाई पर आ पड़े और खर्राटे लेने लगे ।

मिश्राणीजी चोट खाई हुई नागिन की तरह पैर पीटती, बड़बड़ाती भोजनालय में आईं और बरतनों को पटक-पटककर "यह दुनिया अब रसातल में जाने वाली है," यह बात रसोई के बरतनों पर प्रकट करने लगीं । कबरी बिल्ली को लात मारकर कहने लगीं—"हरामज़ादी !

सवेरे-सवेरे ही सामने आती है ? मर मुई !"

राधे बाबू पर चाहिए वैसा असर नहीं हुआ, इससे मिश्राणीजी मन-ही-मन जल उठीं। इस बात को लोगों में प्रकट किये बिना कैसे चल सकता है ? ऐसी बातें छिपाने में पाप है, ऐसा उन्होंने निश्चय किया।

सारे गाँव में बात फैल गई है। गूँगी चन्दा अर्थात् वह गूँगी छोकरी जो राधे बाबू के यहाँ रहती थी—हाँ-हाँ वही, वही राँड···न ···अरे भाई साहब छोड़ो न बात ! गाँव का उतार-है-उतार। मैंने कहा था न भाई, मैंने तो पहले ही कहा था न कि दाल में कुछ काला है। हाँ नहीं तो। अरे हाँ, कल सुना न···हें···हें···यह तो ऐसा ही ···और यह करतूत की किसने ? खबर है ? नहीं। अरे वाह ! ग़ज़ब के भोले—दूसरा कौन वह गोपाल ! पुत्र के लक्षण पालने में ही दिखाई पड़ जाते हैं। ग़ज़ब का चोर। दिन-दहाड़े बाग में चोरी की···वह तो उस दिन सेठ कुन्दनमल ने बचा लिया, नहीं तो साले को फाँसी लग गई होती; और नहीं तो जन्म-कैद तो निश्चय ही···पर वह गजानन बीच में पड़ गया। वह कौन कम है···वह भी उसी मिट्टी का बना है···हरि···हरि···हरि···पृथ्वी रसातल में न जाय तो फिर क्या हो ? घोर कलियुग आ गया है ! क्यों चौबे जी, ठीक है न ?

और चरखा कातती नत्थू की काकी और राधू की माँ ने तो ऐसा भी ज़ाहिर किया कि उन्होंने अपनी आँखों सब देखा है। न मानती हो तो पूछो मिश्राणीजी को···उस दिन रात में, हाँ-हाँ···दोनों जने····मुए···· नकटे को लाज···

"सुना न !" पंडित गजानन को उस तरफ़ से जाते देख राधू की मां बोली।

"क्या ?"

"वाह, फिर पूछते हैं कि क्या ? मानो कुछ जानते ही न हों।"

"पर बात क्या है, राधू की माँ ?"

"हाँ, कलियुग आ गया है और क्या···देखी अपने गोपाल की करतूत ?"

"करतूत !"

"जाने कुछ जानते ही न हों···"

"नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं जानता," पंडितजी बोले, जिन्होंने कि गाँव में ये बातें अभी-अभी सुनी थीं।

"अब झूठ किसलिए बोलते हो ? वह चन्दा गर्भवती है, सुना अब ?"

"क्या कहा तुमने ?"

"हाँ, हाँ, जो कहा है वह सच ही कहा है।"

"शम्भो, शम्भो !"

"वह तुम्हारा शम्भो, उनको खुद ही बचाने आने वाला है।"

"हरि-हरि" करते हुए पंडित जी वहाँ से घर की तरफ़ चले और विचारने लगे, लो, यह क्या हो गया ? राँड ने यह क्या किया ? अब ? किसको ख़बर इसका परिणाम ?

उनका हृदय धड़कने लगा। उस रात की सब बातें एक के बाद एक उनके नेत्रों के सामने आने लगीं और फिर "हे शम्भो ! तू जो करे सो ठीक···"कह उठे।

इसका कुछ-न-कुछ फैसला करना ही चाहिए; अन्यथा अगर कहीं गाँव में अपनी ही करतूत ज़ाहिर हो गई तो हरि-हरि···कहीं मुँह भी दिखा नहीं सकूँगा।

गोपाल की मनोदशा विचित्र थी। एक क्षण में क्या-का-क्या बन गया ? गूँगी कब उसके पैरों पर सो गई, इसकी भी उसे ख़बर नहीं थी। चन्दा का मन भी जाने कैसा हो गया। वह अपने-आपको गालियाँ देने लगी—"मुई राँड, ऐसा क्यों किया ? उसे याद आया, उस रात को वह गोपाल के पैर दबाती थी और फिर एकाएक नींद का झोंका

आते ही वह वहीं लुढ़क गई थी—फिर गाढ़ सुषुप्ति··· !

और फिर ?

एक ही क्षण में अब क्या-से-क्या बन जायगा—गोपाल विचार रहा था। सारे गाँव में बात फैल जायगी। लोग उसके ऊपर फटकार बरसाएँगे···और वह अपना मुख संसार को कैसे दिखा सकेगा ? फिर विचार आया—उसने ऐसा क्या बुरा काम किया है कि जिससे वह इस प्रकार आत्मग्लानि से सिहर उठता है ? गूँगी को नींद आते ही कदाचित् वह खाट पर लुढ़क गई तो इसमें क्या बुराई थी ? बुराई ? लोक-दृष्टि में ?···· लोक-दृष्टि ! वह विचारने लगा। हाँ-हाँ, लोक-दृष्टि। लोग क्या कहेंगे ?

तो अब इसके लिए क्या उपाय है ? सन्ध्या तक वह खाट में पड़ा रहा। कोई उसकी खबर लेने नहीं आया। चन्दा ने भी अपना मुँह नहीं दिखाया।

तभी पंडित गजानन वहाँ आ पहुँचे। राधे बाबू अभी ही बाहर से आकर हुक्का ले आँगन में चक्कर लगा रहे थे। उनको देखकर पंडित जी बड़बड़ा उठे—

"कहाँ है वह बदमाश गोपाल ?"

"ओह ! आइए···"

"कहाँ है वह कलमुँहा···?"

"अन्दर आइए न, अन्दर !"

"क्या आइए, सहन करने की भी हद होती है हद ! कहाँ है रे···"

गोपाल चुप ही रहा।

"क्यों जीभ टूट गई है ?"

तब भी गोपाल चुप ही था।

आखिर खुद घर के भीतर जाकर गरजने लगे—

"क्या है यह सब ? बेशरम !"

गोपाल शान्त !

"यह···ऐसी आशा नहीं थी···दुष्ट···मेरे नाम पर तैंने पानी फेरा···" और फिर वहीं बैठकर सिर पीटकर रोने लगे—

"हाय मेरे बाप ! कहाँ से लाकर इस कम्बख़्त को तुम्हारे घर रखा राधे बाबू ! कहाँ मरी है वह बेशरम नीच···ओह मेरी दैया" और फिर क्रोधावेश में आकर बोले—"आज दिन तक बोला नहीं, पर अब चुप नहीं रहूँगा···बोल, उस दिन रात्रि के समय उसे लेकर कहाँ गया था ?"

राधे बाबू आँखें फाड़कर यह सब देख रहे थे।

"बोल !"

उसने जवाब नहीं दिया।

"राधे बाबू, निकाल दो हरामखोर को। ज़हरी साँप पाल लिया है तुमने, ज़हरी साँप ! ऐसा व्यभिचार···ऐसा काम ?"

इसके बाद उन्होंने अपनी शिष्ट भाषा में जो कहा उससे गोपाल स्तब्ध रह गया—घबड़ा गया। वे सब बातें कहीं गोपाल को गालियाँ देकर। जब पंडित गजानन चले गए तब राधे बाबू अपने पाट पर बैठ गहन विचार में पड़ गए। ऐसी आफत उनके सिर पर आएगी, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। दुनिया से विरक्त, खाने में, सोने में और हुक्का पीने में ही जिन्होंने अपना जीवन बिताया था, जिनको सांसारिक बातों में कुछ भी ज्ञान नहीं था, वे राधे बाबू इस महान् आफ़त को अपने ऊपर आ पड़ी देख, एक क्षण क्षुब्ध हो गए। उनके माथे पर सल पड़ गए और फिर दीर्घ निःश्वास डाल वे बोल उठे—

"गोपाल ! गोपाल !! ऐसी आशा मुझे तेरी ओर से नहीं थी भाई !"

गोपाल इन शब्दों को सहन नहीं कर सका। आज दिन तक राधे बाबू गोपाल से एक मित्र की भाँति ही बरताव करते आए थे, बड़े की तरह नहीं और वे ही उठकर आज ये शब्द कहते हैं। उनका भी विश्वास वह खो बैठा है, यह देख वह निराशा से घिर गया। इस घटना के साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं, पर फिर भी यह कलंक

उसके ऊपर मढ़ा जा रहा है। उसका मुख कितना दुखी लगता था, मानो इस पृथ्वी पर अब उसको चाहने वाला कोई रहा ही नहीं। इस संसार में अब उसका कोई भी नहीं।

जब भाभी सुनेंगी कि उस रात्रि में वह इस गूँगी को नाव में बैठाकर घूमता था, तब उनके मन में उसके लिए कैसी भावना उत्पन्न होगी ? किसलिए उस रात को उसने सारी बातें भाभी से नहीं कह दीं ? आज उसकी बात कौन मानेगा ? वह बिलकुल निर्दोष है। दया से प्रेरित होकर उसने उस रात को इस गूँगी को सहायता दी थी; उसे मरने से बचाया था। यह बात कौन मानेगा ? इस बात को मानने के लिए कौन तैयार होगा ? जब भाभी पूछेंगी—"गोपाल, तूने तो किसी दिन अपनी भाभी को धोखा नहीं दिया भाई ! यह बात तूने मुझसे कही क्यों नहीं ?" तब वह क्या उत्तर देगा ? उसका हृदय विषाद और ग्लानि से मथने लगा। छिः छिः गोपाल ! यह तैंने क्या किया ? जिसके स्नेह पर तू जीवित है—वही तुझे धिक्कारकर कहेगी—"छिः छिः तेरा मुख···"

ओह ! और सती जीजी ? जीजी का विचार आते ही उसको वह सन्ध्या याद आई, जब जीजी ने कहा था—'भाई, अखिल विश्व स्नेह पर ही जीवित है।" आज मुझसे स्नेह करने वाला कोई नहीं—नहीं, कोई नहीं।···जब जीजी सुनेंगी कि उनके भाई ने···उससे भी उस रात्रि की बात छिपाई है तब उनको···हज़ार बिच्छू डंक मार रहे हों, ऐसी वेदना उसे होने लगी···नहीं-नहीं, इस विश्व में अब उसका कोई नहीं।

आकाश में बादल घिरने लगे थे। रात्रि का आगमन हो चुका था। वह अपनी खाट पर पड़ा था।

थोड़ी ही देर में गरज-तरजकर पानी ज़ोर से पड़ने लगा। उसकी सँभाल लेने कोई अन्दर आया नहीं···ना, ना, वह चन्दा भी नहीं, जिसके लिए आज सारे गाँव में वह बदनाम हुआ है···किसलिए वह खाट में···और कुछ वह नहीं सोच सका। क्रोध से वह जल उठा। कैसी

विरुद्ध भावनाओं का बवंडर उसके मन में उठने लगा था···

और बाहर भी वैसा ही प्रचण्ड तूफ़ान चल रहा था। आकाश के बादल एक-दूसरे के साथ तुमुल युद्ध में उतर पड़े थे। वे गड़गड़ाहट करते थे। बिजली चमकती थी। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो कहीं बिजली गिर पड़ी हो।

वह सोचने लगा—यहीं, इसी समय बिजली उस पर टूट पड़े तो कैसा अच्छा हो? उसकी यह सारी व्यथा शान्त हो जाय!

बाहर प्रकृति का युद्ध अधिक प्रचण्ड हो गया। पानी ज़ोर से पड़ने लगा। ऊपर का छप्पर काँपने लगा; कवेलू (खपरैल) तूफ़ान करने लगे मानो अभी सारा छप्पर उड़ जायगा।

बहुत देर तक वह बिछौने में बैठा रहा। फिर उठकर बाहर आया। बाहर प्रकृति के तूफ़ान की अपेक्षा उसके मन का तूफ़ान तो अनेक गुना भयंकर था।

वह घर से बाहर आया। इसी घर में वह पाँच वर्षों से रह रहा है। भाभी ही उसकी माँ जैसी थीं, बहन-जैसी थीं, सब-कुछ ही थीं···अब उसका कोई नहीं···

वह आगे चला। राधिकाजी के मन्दिर के पास आते ही देखा कि गली में घुटनों तक पानी आ गया है।

गली पार करके सती के घर तक आया। इसी में रहती हैं उसकी जीजी, सती···उनको भी अपना कलमुँहा मुख कैसे दिखाए···ना-ना, अब स्नेहहीन जीवन सर्वथा वृथा है।

सामने ही पुल पर से होकर उजाड़ नदी, पूर में धू-धू-धू करती बह रही है। इसी जगह पीपल का वृक्ष था। वह कभी का नदी में पड़कर उसके साथ ही उस रात को बह गया है।

बस···यह नदी ही उसका आधार है।

जहाँ नदी ले जाय, वहीं जाना योग्य है। भुजाओं में तो बल है··· और वह तूफ़ानी नदी में कूद पड़ा और नदी के पूर के साथ बहने लगा।

दस

* * *

चन्दा इस घटना को भूल जाने का निरन्तर प्रयत्न करने लगी। गोपाल को अपना मुँह तक न बताने का उसने निश्चय किया और तब से—मिश्राणीजी के तीक्ष्ण वचन सुनने के बाद से—वह एक बार भी दूसरे घर में नहीं गई; पर मिश्राणीजी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वे तो बात-बात में चन्दा को मर्म-बेधी वचन सुनाने लगीं।

जब वह रसोई में काम करने गई तब वे बोल उठीं—"हूँ···हूँ, भीतर मत आना बाई, तू तो वहीं शोभा देती है।"

और फिर जब चन्दा चल दी तब उसे सुनाती हुई बोलने लगीं—

"अरे, हे भगवान्, लक्षाधिपति के घर जन्म देने के बदले तूने इसे कहाँ जन्म दिया भिखारी के यहाँ? और मेरे प्रभो! ऐसा रूप देकर क्यों कर दिया गूँगी बेचारी को? पलंग पर पोढ़ने······" इससे आगे के शब्द सुनने को चन्दा रुकी नहीं। एक कोने में जाकर जड़वत् बैठ गई।

जब चन्दा से कुछ काम पड़ा तब मिश्राणीजी ने पुकार मचाई—

"पधारिए सेठानीजी, क्या कर रही हो वहाँ? आराम कर रही हो?"

और जब वह आई तब कहने लगीं—

"ओहो! भूल हुई! भूल हुई!! पधारो-पधारो!" फिर उसको रोती हुई देखकर वे बोलीं—"लो, मुझे रोकर डराना चाहती है? तेरी जैसी तो सत्रह सौ सात छोकरियाँ मैंने अंगुली के इशारे पर नचाई हैं। हाँ, बाई ले, रोकर जाने मुझे धमकाना चाहती है? कर्म तो बहुत अच्छे किये हैं न!"

चन्दा उसी कोने में जाकर रोने लगी।

एक असह्य वेदना से उसका हृदय फटने लगा। तभी उसके उदर का जीव फड़कने लगा।

"मुई राँड ! यह तैंने क्या कर डाला ?" उसका मन पुकार उठा।

"हे राम ! क्या होगा मेरा ? कहाँ जाऊँगी ? इस जीव को लेकर कैसे जीऊँगी ?"

और फिर वह मूढ की तरह जहाँ-की-तहाँ पड़ी रही।

भोजन का समय हुआ। राधे बाबू आज भोजन किये बिना ही चल दिये। जिनको एक समय भी स्वादिष्ट भोजन नहीं मिलता तो मानो क्या-से-क्या हो जाता, उन राधे बाबू को आज भोजन नहीं भाया। एक गहरा निःश्वास डालकर, चौरस टुकड़े में बँधे हुए अपने काग़ज़ों के बस्ते को ले वे अपने काम पर चले गए। ऑफिस में भी आज वे किसी से न बोले।

"क्यों राधे बाबू ! कैसे चल रहा है ?" एक सहकारी ने पूछा।

"ओह ! नमस्ते !" वे बोले और फिर चश्मा चढ़ाकर अपने काम में लग गए।

ऑफ़िस के लोग अंगुलियाँ बता-बताकर आपस में कानाफूसी करने लगे; पर राधे बाबू का ध्यान आज न जाने कहाँ चला गया था। आज पत्नी होती तो, वे विचारने लगे। 'प्रभो ! हद कर दी तुमने', वे बोल उठे।

सन्ध्या को घर जाते समय एक महाशय ने हिम्मत करके कहा—"हद हो गई राधे बाबू !"

पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

"दुनिया विचित्र है बाबू ! किसी के साथ भलाई करना भी ठीक नहीं। वह तो मानो···" फिर वे गृहस्थ बोले।

"नमस्ते !" कहकर राधे बाबू चलने लगे। तब भी वे सद्गृहस्थ अपनी सहानुभूति दिखलाए बिना नहीं रह सके।

"यहाँ तो एक बार दो और टुकड़े—क्या समझे राधे बाबू ! ऐसा

कलंक, घर में रक्खा जाता है क्या ?"

तब भी राधे बाबू ने कोई जवाब नहीं दिया। वे सीधे घर की तरफ़ चलने लगे।

घर आकर अपने तख़्त पर बैठे-बैठे, चश्मे को नाक पर जमाते शून्य-दृष्टि से आकाश की ओर देखते रहे। आज हुक्का पीना भी उन्हें नहीं सूझा। मिश्राणीजी ने यह देखा। उनसे रहा नहीं गया। चन्दा के पास आकर बोलीं—"सेठानी जी ! क्या आज कुछ काम-वाम नहीं करना है ?"

गूँगी चन्दा कुछ बोली नहीं।

"अरे, बाबूजी आ गए हैं। उनका हुक्का भर आ न !" लटका करके वे बोलीं।

जब चन्दा राधे बाबू का हुक्का भरने सामने के घर में आई तब भी वे अपने विस्फारित नेत्रों से आकाश की ओर देख रहे थे। उनकी असह्य वेदना गूँगी से भी छिप न सकी।

एकाएक चन्दा की तरफ़ दृष्टि करते ही राधे बाबू का मन न जाने कैसा हो गया···'छिः-छिः यह क्या ?' पुराने संस्कार मानो उनसे कहने लगे—'अरे रे ! ऐसा पाप ?'

दूसरे क्षण उनका ध्यान चन्दा के अंग-प्रत्यंग की तरफ गया··· उनको विचार हुआ—मेरे एक भी बालक नहीं है। इसी से ऐसा होता है ? मेरे एक पुत्र होता, एक पुत्री होती ! छोटे बालक का मुख देख पाया होता। उसका हँसता चेहरा मैंने देखा होता, उसके उछलते हाथ-पैर देखे होते, तो इस आने वाले बालक के लिए क्या मेरे मन में इतना तिरस्कार पैदा होता ? इसमें उस निर्दोष बालक का क्या अपराध ?

और अपराध किसका ? चन्दा का ? या बालक के पिता का ? पिता कौन ? गोपाल ? गोपाल मेरे ही घर में रहकर ऐसा काम कर सकता है ? क्या यह सम्भव है ?

पर न जाने क्यों, कितने ही प्रयत्न करने पर भी, गोपाल का इसमें दोष है अथवा गोपाल ने ऐसा क्या महान् पाप किया है, इसे राधे बाबू

समझ नहीं सके ।

जब चन्दा हुक्का रखकर चली गई तब राधे बाबू का हृदय इस अनाथ गूँगी छोकरी की तरफ़ न जाने कैसी सहानुभूति से भर गया; पर वे एक शब्द भी बोले नहीं ।

दूसरे दिन सवेरे ही सारे गाँव में बात फैल गई कि गोपाल भाग गया है""उसने आत्म-हत्या की है । कोई कहता—वह आत्म-हत्या करे, इस बात में सार नहीं भाई""अरे बेटा कहीं भाग गया होगा··· । बेटे की करतूत तो देखो ? घर के ऊपर ऐब लगाकर, छोकरी को अकेली निराधार छोड़कर भाग गया···साला बदमाश ! देखा न, अरे, मैंने तो पहले ही कहा था न ? आदि···आदि ···

राधे बाबू यह समाचार सुन अधिक व्याकुल हो गए। अब क्या होगा ? बेचारा कहाँ चला गया होगा ? पंडित गजानन ने जब आकर कहा—

"देखा न, कहा था न मैंने ?" तब राधे बाबू समझ नहीं सके कि पंडितजी ने क्या कहा था । उसने केवल सिर हिलाया ।

"अच्छा हुआ । वह हरामखोर था, अब राधे बाबू इस राँड को भी चोटी पकड़कर···" पर राधे बाबू का ध्यान जाने कहाँ था ।

"क्या समझे राधे बाबू ?"

"ओह," वे बोले और फिर हुक्का पीने लगे ।

जब अपना तीर निशाने पर नहीं लगा दीखा तब पंडित गजानन बोलने लगे—

"मेरा इसमें दोष नहीं राधे बाबू ! मुझे क्या ख़बर कि यह कम्बख़्त ऐसा निकलेगा । मुझे ऐसी ख़बर होती तो तुम्हारे यहाँ इस हरामजादे को···"

"नमस्ते···मुझे जाना है," ऐसा कह राधे बाबू उठकर चल दिए।

पंडित गजानन यह देखकर खीझ से गए । आँखें फाड़कर बाहर जाते राधे बाबू को देखते रहे और फिर हाथ का डण्डा ज़ोर से पछाड़ा—

"साला···हरामख़ोर···"

ये शब्द किसके लिए उन्होंने व्यवहृत किये, यह जानना मुश्किल है। और फिर हाथ का डंडा हवा में घुमाते, बड़बड़ाते हुए वे बाहर निकल घर की तरफ़ चल दिए।

सती ने उनको देखकर पूछा—

"यह बात सच्ची है ?"

"सच्ची नहीं तो क्या झूठी है ? वह साला हरामखोर राधे बाबू के घर को कलंक···"

"कलंक की बात मैं नहीं पूछती," सती ने दृढ़ता से कहा।

"तो क्या पूछती हो ?" पंडितजी ने प्रश्न किया।

"गोपाल घर में नहीं, यह···"

"ओह यह ? घर में से भाग गया हो फिर घर में कहाँ से होगा। एक ही स्थान पर दो वस्तु का भाव···"

"हूँ," सती बोली और इस हुंकार ने पंडित गजानन का बोलना बन्द कर दिया। थोड़ी देर पीछे बोले—

"क्यों चुप हो गईं ? बहुत दया आती है उस पर क्यों ?" कटाक्ष-मय वाणी में पंडितजी ने कहा।

पर सती ने इसका उत्तर नहीं दिया।

"वह साला नमकहराम छोकरा, जिस घर में खाया उसी घर को खोदते हुए शरम न आई। हरि···हरि···अत्यन्त घोर कलियुग आ गया है। शम्भो ! शम्भो !!" वे बड़बड़ाए और गाल पर दो-चार चपतें लगाईं। फिर भगवान् की तस्वीर के आगे जाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर बोलने लगे—

"क्षमा करना मेरे पिता ! ऐसे बदमाशों से पाला मत डालना मेरे प्रभो !"

और फिर कोई विचार आते ही अपना डण्डा हाथ में ले, लाल अँगोछा कंधेपर डाल नदी की तरफ़ चल दिए।

सती का मन न जाने कैसा हो गया। इस बात से गोपाल का सम्बन्ध हो सकता है, यह बात उसकी कल्पना में ही नहीं आती थी। किसी भी प्रकार वह यह मानने को तैयार नहीं थी कि गोपाल ऐसा कार्य कर सकता है। पर यदि यह बात झूठी ही है, तो फिर वह भाग क्यों गया? भाग जाने से तो उसके ऊपर लगाये हुए कलंक की और पुष्टि हो गई। वह भाग क्यों गया?

सती गोपाल के निर्दोष चेहरे की कल्पना करने लगी। उस दिन वह इसी घर में उसके सामने बैठा भोजन कर रहा था। कैसे प्रेम से उसे पास बैठाकर उसने भोजन कराया था? बालक-जैसा गोपाल! जिस गोपाल पर उसे अपार स्नेह है, वही गोपाल यह कर सकता है? कदापि नहीं, उसका मन पुकार उठा। पर बारम्बार एक यही प्रश्न उसके मन में उथल-पुथल मचाने लगा—किसलिए वह भाग गया? अपनी जीजी को भी मिलने नहीं आया।

आज किसी भी तरह भोजन बनाने को उसका मन नहीं हो रहा था, पर बनाये बिना भी तो छुटकारा नहीं था। खिचड़ी डालकर वह वहीं पड़ी रही।

सन्ध्या हो गई, पर वह उठी नहीं। दिया-बत्ती करने का समय हो गया था। गाँव के घरों में से धुआँ निकलने लगा था। थोड़ी देर में राधिकाजी के मन्दिर में से घण्टाध्वनि आने लगी; आरती होने लगी; तब भी सती मानो अस्वस्थ हो, इस प्रकार चूल्हे के पास ही पड़ी रही।

"क्यों आज दिया-बत्ती भी नहीं जलेगी?" पंडितजी ने घर में आकर कहा।

सती ने कोई जवाब नहीं दिया।

"शम्भो! शम्भो!! ऐसे घर से तो घूरा भला।" और फिर खुद माचिस ढूँढ़ दिया जलाने लगे।

तब भी सती कुछ बोली नहीं।

"क्यों आज खाने को भी नहीं मिलेगा क्या? गोपाल गया इससे इतना अधिक दुःख हो रहा है?"

सती उठी और थाली में खिचड़ी परस पति के सामने ला रखी।

"वाह, वाह, वाह! घर में पत्नी हो तो ऐसी ही हो। शम्भो! तैंने चौथी बार ब्याह करने को किसलिए मुझे कहा?"

तब भी सती एक अक्षर नहीं बोली।

यह देखकर पंडितजी का क्रोध बढ़ने लगा।

"क्यों? क्या आज अकल चरने गई है?"

सती पति के सामने देखती रही।

"पानी-वानी का लोटा भी भरने की फ़ुरसत नहीं है क्या?"

सती ने उठकर पानी का लोटा भर दिया। एक ग्रास मुँह में लेते ही पंडितजी गरजे—

"यह खिचड़ी है? नमक भी डाला नहीं। हरे-हरे प्रभो! नहीं खाऊँगा।" ऐसा कहकर पंडितजी ने थाली दूर हटा दी और क्रोध-ही-क्रोध में हाथ धोकर घर के बाहर चल दिये। सती ने भी कुछ नहीं खाया।

जब पंडितजी लौटे तब उन्होंने देखा कि सती रसोईघर के दरवाज़े पर ज़मीन में ही सो गई है।

"ओह! सो गई हो? बहुत थकान आ गई मालूम होती है··· शम्भो! शम्भो!! नहीं नहीं, उठना मत, उठने की आवश्यकता ही क्या है?"

पर सती को सचमुच नींद आ गई थी। पंडितजी को लगा, पत्नी ढोंग कर रही है।

दीपक हाथ में लेकर वे ही पत्नी की ओर गए और उसका प्रकाश पत्नी के मुख पर डालकर बोले—

"ओह! नींद आ गई है?"

प्रकाश पड़ते ही पत्नी हड़बड़ाकर जाग उठी। उठते ही उसका सिर

दीपक से टकराया और दीपक पंडितजी के हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

"हरि-हरि," घबड़ाकर पंडितजी बोले और थर-थर काँपने लगे। ईश्वर की कृपा से दीपक ज़मीन पर पड़ते ही गुल हो गया।

सती एक शब्द भी नहीं बोली। पति का बिस्तर बिछा वह ज़मीन पर ही सो गई। पतिदेव भी इस घटना के बाद एक शब्द भी न बोल सके। थोड़ी ही देर में उनकी नासिका से निकलता हुआ दीर्घ गम्भीर घोष सारे घर में गूँजने लगा, पर सती को नींद नहीं आई। बारम्बार गोपाल का स्निग्ध निर्दोष चेहरा उसकी आँखों के सामने झूलने लगा और फिर उसकी आँखों से गरमागरम आँसू बहकर मिट्टी से लिपी हुई ज़मीन पर गिर उसे भिगोने लगे।

चन्द्रा के मन की स्थिति का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है? प्रथम तो उसे गोपाल पर बहुत क्रोध आया। क्यों वह यहाँ से भाग गया? जब वह निर्दोष है तो यह कलंक अपने माथे पर लेकर क्यों वह भाग गया? और भागकर उसने उसकी कैसी गम्भीर स्थिति कर डाली है?

मिश्राणीजी के कटु वचन, उनके कटाक्ष और सबसे अधिक तो बाघिन की जैसी उनकी तीव्र आँखें वह सहन नहीं कर सकी; पर उससे भी अधिक आघात उसे लगा राधे बाबू का चेहरा देखकर। उनका उदास मुँह, आँखों में समाई हुई व्यथा और घबराया हुआ चेहरा देख उसे इतनी वेदना हुई कि उसे लगा कि राधे बाबू के चरणों में लोट जाऊँ और क्षमा माँगूँ कि मुझे माफ कीजिए, मैंने तुम्हारे घर खाया है; पर मैं नमकहराम निकली हूँ। पर इसमें दोष किसका? किसे दोष दूँ?

फिर एकाएक, रात के समय उसका ध्यान पेट में बैठे हुए बालक ने खींचा। बारम्बार वह भीतर गतिमान होने लगा। यही इस सब

दुख का कारण है। किसलिए बिना बुलाए यह आना चाह रहा है? घृणा से उसका मन न जाने कैसा हो गया।

क्या अब वह इस घर में रह सकेगी? यह विचार आते ही वह अपने टाट के बिछौने पर से उठकर खड़ी हो गई। रात के बारह बज चुके थे। सर्वत्र सन्नाटा था—झिल्ली और झींगुर की झँकार-मात्र ऊपर के छप्पर में से आ रही थी।

एक विचार आते ही वह रसोईघर की तरफ़ गई और वहाँ से चाकू उठाकर अपने बिछौने की तरफ़ बढ़ी।

नहीं-नहीं, वह इस घर में, इस संसार में अब नहीं रह सकेगी। फिर उसके उदर में बालक फड़कने लगा। इस बालक की तरफ़ उसके हृदय में अपार क्रोध और तिरस्कार की भावना जाग्रत हुई। उसके कारण ही उसे यह असह्य दुख, यह अपार लज्जा और वेदना सहन करनी पड़ रही है। वह और यह इस असार दुखमय संसार में रहने को पैदा ही नहीं हुए।

वह घर छोड़कर गली में आई और गली से राधिकाजी के मन्दिर के पास आ पहुँची। इस गली में होकर, वह उस रात इस गाँव में आई थी। सामने की गली में होकर वह टेकरी पर जा पहुँची! धू-धू-धू करती उजाड़ नदी का पानी पुल में होकर बह रहा था। एक क्षण वह रुकी। असंख्य विचार उसके दिल में उठने लगे। वह सामने उस पुल पर खड़ी थी। और उस दुष्ट······पंडित के साथ उसकी भेंट हुई थी। किसलिए वह इस गाँव में आई थी? आज एकाएक उसे अपनी माता याद आ गई। वन में और बाड़ियों में भटकना, पिता के साथ लड़ाई, माता के साथ मारे-मारे फिरना, माता की मृत्यु—ये सब उसकी आँखों के सामने आकर उसे बेचैन बनाने लगे। किसलिए उसकी माता ने जन्मते ही उसे मार नहीं डाला? किसलिए वह जीवित रही थी इस संसार में?

एकाएक उसे अपनी माता का स्नेह, उसका अपार वात्सल्य, उसके

लिए सहे हुए दुख याद आने लगे। किसलिए माता ने ऐसी यातनाएँ सहन की थीं ? उसके स्नेह से प्रेरित होकर ही तो न ? और आज··· आज वह स्वयं भी माता बनने बैठी है—थोड़े ही दिनों बाद इस संसार में आने वाले बालक के लिए उसके मन में कैसी भावना होगी ? छिः छिः गूँगी···ऐसा ही स्नेह माता अपनी संतान के लिए दिखाती है ? एकाएक उसका मन बालक के प्रति स्नेह से छलछला भर गया। क्या अपराध किया है इस बालक ने जो आज वह उसे धिक्कारती है, उसकी मौत की इच्छा करती है।

पर यह भावना उसके मन में अधिक टिकी नहीं। एकाएक बालक फिर स्पन्दन करने लगा। उसका मन फिर से एक अथाह व्यथा और तिरस्कार से घिर गया। वह और विचार करने के लिए रुकी नहीं। तेज़ी से टेकरी पर से उतरकर पुल पर आ पहुँची।

आकाश में काले बादल कभी-कभी गर्जना करने लगते थे। नीचे काला गम्भीर जल उछलता धू-धू-धू करता बह रहा था। पुल पर होकर गाँव के श्मशान की तरफ वह चलने लगी। एकाएक एक झाड़ के पास आकर वह रुक गई। इसी स्थल पर, आज से नौ या नौ से अधिक मास पहले, वह उस भयंकर रात्रि में भूख की पीड़ा से पड़ी थी—भूख के मारे वह आँसू बहा रही थी, जोर-जोर से रोती थी, अचानक गोपाल आ पहुँचा था और इसके साथ वह नाव में बैठकर सेठजी के बगीचे तक गई थी और वहाँ उसने गोपाल के दिये हुए फल खाए थे।

गोपाल की याद आते ही उसे रोना आने लगा। कैसे विचार—कैसा तुमुल युद्ध चल रहा था उसके नन्हे से मन में ? कैसी विरुद्ध भावनाएँ पैदा हो रही थीं और मिटती थीं।

"नहीं, नहीं यह विचार करने का समय नहीं।"

वह झाड़ी के पास चित लेट गई। फिर पास का चाकू उसने खोला।

एकाएक बालक फिर स्पन्दन करने लगा, मानो पुकारकर कहने का का प्रयत्न कर रहा हो—'माँ, माँ, इसमें मेरा क्या दोष ? तू किसलिए

मुझे मारना चाहती है। माँ—ओ माँ !'

यह मार्मिक चीख मानो चन्दा सुन रही थी। उसने अपनी धोती फाड़कर अपने दोनों कानों को बन्द किया और फिर पास से एक पत्थर उठाकर, चाकू पेट पर रख, पत्थर से प्रहार करने को उद्यत हुई।

ग्यारह

उछलते, और जोर से बहते उजाड़ के पानी में कूदने के बाद गोपाल कितने ही मील तक तैरता रहा, पर इसके बाद अकस्मात् उसके हाथ-पैर लकड़ी-जैसे फूल गए। शीत से उसका शरीर काँपने लगा, आशंका और भय से उसका मन घिर गया। मृत्यु उसके सम्मुख मुँह बाये खड़ी हो गई। जिस मृत्यु की वह चाहना करता था उसी का भीषण स्वरूप देखकर उसकी घिग्घी बँध गई। मृत्यु के ऐसे स्वरूप की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। किसलिए वह इतना भयंकर लगता था ?

एक क्षण में उसका गत जीवन उसके सामने नाचने लगा। बाल्यकाल के वे दिन ! माता के साथ वह रहता था। पिता तो वह बिलकुल बच्चा था, तभी मर गए थे। और दस वर्ष का हुआ तब उस गाँव की छोटी-सी झोंपड़ी में माता भी उसे बिलकुल अकेला छोड़कर चलती बनी तब वह बिलकुल निराधार स्थिति में आ पड़ा था।

उजाड़ नदी, उसका पुल, टेकरी और सती जीजी की गली तथा राधे बाबू का घर एक के बाद एक उसकी आँखों के सामने नाच उठे··· और वह गूँगी छोकरी ! प्रभो ! यह क्या ?

फिर उसे मालूम हुआ मानो वह कहीं गहरा-ही-गहरा उतरता जा

रहा है, उसकी संज्ञा लुप्त होती जा रही है। चारों ओर अन्धकार··· निविड़ अन्धकार !

उजाड़ का जल, उछलता-कूदता, शोर मचाता बहा जा रहा है। किसी-किसी जगह आसपास के वृक्षों को जड़ से उखाड़, अपने भँवरों में खींच आगे बढ़ता है। सामने की टेकरियों से टक्कर खा दो-दो माथे ऊँचा उछलता है और पछाड़ खा, फेनिल बन नीचे गिर जाता है; फिर सामने की पहाड़ियों को अंक में लेकर आगे के करारों की प्रदक्षिणा कर आगे भागता है। गाँवों के लोग नदी का यह भयंकर स्वरूप देखने झुण्ड-के-झुण्ड इकट्ठे होते हैं। निचाई में आये हुए गाँवों को वह अपने पेट में समा लेने को बढ़ता है। लोग भाग-दौड़ कर रहे हैं और बालक किलकारी मार माँ-बाप के गले से चिपट पड़ते हैं···उजाड़ का पानी, मदमस्त बना हुआ हाथी की भाँति पागल होकर आगे बढ़ता ही जाता है।

गिरिशृङ्गों की यह पंक्ति है। आसपास निविड़ बन आया हुआ है। एक अठारह वर्ष की छोकरी टेकरी पर बनी हुई अपनी झोंपड़ी में बैठी नदी का यह ताण्डव-नृत्य देख रही है और वह टेकरी के ऊपर से ही नदी में कूदती है।

डुबकी मारकर एक बहते हुए व्यक्ति को वह बालों से पकड़ती है और ऐसे प्रचण्ड प्रवाह के सामने, अपनी भुजाओं से लड़ती-लड़ती वह थोड़ी दूर किनारे के पास आ पहुँचती है।

किनारे के पास आकर वह उस व्यक्ति की देखभाल करती है और तुरन्त ही औंधे डाल उसके पेट का पानी निकाल डालती है। फिर उसे अपनी पीठ पर रखकर दौड़ती-दौड़ती टेकरी पर की अपनी झोंपड़ी में ले आती है। व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास को देखकर उसे तसल्ली होती है। वह झोंपड़ी के बाहर जाकर एक बूटी निकाल उसे घिसकर पिलाती है।

इस युवक का सुन्दर चेहरा देखकर उसे लगता है, कोई

संस्कारी व्यक्ति है। उसका यज्ञोपवीत देखते ही वह समझती है, ऊँचे वर्ण का युवक है। एक घण्टे के उपचार के बाद युवक अपनी आँखें खोलता है।

"मैं···कहाँ ?" वह कह उठता है।

उसके पास ही बैठी, उसके शरीर को सेक करती युवती बोली—

"सो जाओ। मेरे घर हो तुम।"

"तुम कौन हो ?" युवती ने पूछा।

"गोपाल"।

"गोपाल कौन ?"

"गोपाल" फिर भी इतना ही उसने कहा।

युवती मुस्करा दी।

गोपाल, के मुख में गरम दूध डालकर उसने कहा—"अब चिन्ता की कोई बात नहीं।"

गोपाल के मुख पर हँसी की रेखाएँ चमक उठीं। वह फिर सो गया।

सन्ध्या होने की तैयारी है। उजाड़ का जल थोड़ा शान्त हुआ है। आकाश के बादल भी फट गए हैं और लाल सूर्य का गोला पश्चिम में अस्त होने की तैयारी में है। भील-कन्या झोंपड़ी के बाहर एक बड़ी शिला पर बैठी विचारों में बह रही है—कौन होगा यह युवक! किस प्रकार नदी में पड़ा होगा? और उसने देखा न होता तो वह अवश्य मर जाता। एकाएक उसके हृदय में युवक के लिए स्नेह और ममता का स्रोत फूट निकला। उसके पिता सामने के गाँव में काम से गये हैं। कब आएँगे? सामने का पर्वत श्यामल दिखाई देता है। ढाक के वृक्ष चारों ओर उग आए हैं। इन दोनों पर्वतों के बीच में उजाड़ का पानी गहन नाद करता बह रहा है। जिस टेकरी पर उसकी झोंपड़ी है, उसके आसपास भी वनस्पति का साम्राज्य है। दूर-दूर तक हरे-भरे

वृक्षों के सिवाय कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता।

"कौन आ रहे हैं ? पिता ? ओह ! वही हैं।"

अपनी शिला पर से खड़ी होकर वह बोली—

"बापू !"

"बेटा !"

"क्यों देर से आए ?"

"ज़रा काम में फँस गया था बेटा।"

"बापू, एक बात कहूँ ?"

"हाँ, कहो न !"

"भीतर कोई···"

"कौन है ?"

"चलो, बताऊँ।"

भील-कन्या पालू पिता को अन्दर झोंपड़ी में ले गई।

चटाई पर गुदड़ी में लिपटे हुए गोपाल को देखकर वृद्ध ने पूछा—

"यह कौन ?"

"आओ बाहर, तब कहूँ।"

"दूसरे कमरे में ही चल न बेटा !"

"अच्छा बापू !"

इस झोंपड़ी में दो कोठरियाँ थीं। आगे की और पीछे की, जो रसोई के लिए काम में आती थी।

उसी में जाकर एक चटाई पर बैठ पालू बोली—

"बापू आज सवेरे झोंपड़ी के बाहर बैठी थी। उजाड़ धू-धू-धू करती बह रही थी। मैंने देखा—कोई बहा जा रहा है। टेकरी पर से कूदकर मैं उसे पकड़ लाई। देखा, तो गोपाल।"

"गोपाल ?"

"हाँ।"

"कौन है वह ?"

"अभी पूछा नहीं बापू।"

"पा··नी···" बगल की कोठरी में से आवाज़ आई।

वृद्ध दूसरे कोठे में आया। थोड़ा पानी पिलाने के बाद वृद्ध ने पूछा—

"तुम कौन हो भाई?"

"गोपाल।"

"कहाँ के रहने वाले?"

गोपाल ने अपना थोड़ा-सा इतिहास कह सुनाया।

वृद्ध ने अधिक पूछना व्यर्थ समझा।

एक-दो दिन में गोपाल बिलकुल स्वस्थ हो गया। वह इस वन के तथा झोंपड़ी के वातावरण में रम गया। उसे लगा, जिस प्रकृति के लिए, जिस स्वतन्त्रता के लिए वह तरसता था, वह सब उसे यहाँ मिल गई थी। दूर-दूर तक फैली हुई डूँगरियाँ और उनके ऊपर के वन, वृक्ष और लताएँ, टेकरी को अंक में लेती उजाड़ नदी और उसका गहन भागता पानी—बस इन्हीं के लिए तो वह तरसता था।

कभी-कभी उसे अपने ऊपर हँसी आती। किसलिए वह मरने का निश्चय करके नदी में कूदा था? गत जीवन उसे स्मरण हो आता। उस छोटे-से गाँव में, वह छोटा-सा घर। उसमें रहता था वह। और वह गूँगी चन्दा! किसलिए वह वहाँ से भाग आया? उसके ऊपर थोपी हुई शंका अधिक दृढ़ हो गई होगी। लोगों ने सोचा होगा कि गोपाल ने ही यह अत्यन्त घृणित कार्य किया होगा।

वह निर्दोष है तो फिर दोषी कौन? यह विचार आते ही उसके मन में चन्दा के प्रति घृणा की भावना पैदा होने लगी। घृणित कार्य किसने किया होगा? चन्दा ने यह काम करने ही क्यों दिया?

पर ये सब विचार आते ही उसे सती का स्मरण हो आता। सती के कहे हुए वचन याद आते। वह स्वयं सती को मिले बिना भाग आया था। सती जीजी ने क्या धारणा की होगी? उसने भी विचारा

होगा कि गोपाल दोषी है। किस प्रकार वह यह बात अब जीजी से कहे—"जीजी, जीजी! मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। मैंने ऐसा कार्य किया ही नहीं।"

और भाभी? भाभी का स्नेह, भाभी की ममता उसे याद आती। भाभी उस समय वहाँ नहीं थीं। वे आई होंगी और मिश्राणीजी ने जाने क्या-क्या बातें मिलाई होंगी। भाभी के हृदय में कितना दुख हुआ होगा?

और गूँगी का क्या हुआ होगा? उसके ऊपर क्या-क्या बीती होगी?

पालू जंगल में लकड़ियाँ काट रही थी। बहुत देर तक इन विचारों में डूबा हुआ गोपाल मूढ की तरह पत्थर पर बैठा रहा।

"क्यों, क्या सोच रहे हो?" पालू ने पीछे से आकर पूछा।

"ओह! कुछ नहीं।" गोपाल ने कहा।

"कुछ नहीं। झूठ। कब से मैं देख रही हूँ—जड़भरत की तरह बैठे-बैठे तुम क्या सोच रहे थे, कहो तो!"

"ओह! कुछ नहीं।"

"नहीं कहना है क्या?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं।"

"तो?"

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। गोपाल के पास आकर, उसके समीप बैठ, अत्यन्त अनुनय करती हुई वह बोली—

"बोलो, मुझे सारी बातें क्या नहीं कहोगे?"

एक क्षण गोपाल विचारता रहा। फिर बोला—

"मेरी बात सुनकर तुमको मुझ पर घृणा नहीं हो जायगी?"

"नहीं।"

"सच कहती हो?"

"हाँ!"

"पर सुनकर क्या करोगी ?"

"क्या करूँगी ? यह तो मैं भी नहीं जानती; पर जब से तुम आए हो तब से मुझसे दूर-दूर रहते हो। मुझे अपने अन्तर की बात जानने दो। मैं तुम्हारे दुख में भाग लूँगी। कदाचित् तुम्हें सान्त्वना दूँगी। शायद उसे सुनने से मैं तुम्हारे निकट आ सकूँगी।"

"निकट आने की इतनी अभिलाषा है ?"

"हाँ" युवती ने निस्संकोच भाव से कहा।

"पर तो भी मैं दूर-ही-दूर रहा तो ?"

"तो मैं नहीं जानती, " कहकर वह अत्यन्त गम्भीर बन गई। वन में शान्ति छा गई। कोई कुछ बोला नहीं।

"सुनने की ही इच्छा है तो लो सुनो।" और फिर गोपाल ने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। ध्यानपूर्वक पालू सुनती रही। जब गोपाल ने अपनी कहानी पूरी की तब उसने देखा पालू के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं।

"क्यों, रोती हो ?" उसने पूछा।

अपनी धोती के पल्ले से आँसू पोंछ वह बोली—

"कौन कहता है, रोती हूँ।"

"तुम्हारी आँखें।"

"तुम्हारे आँखें हैं या नहीं ?" वह बोल उठी।

"क्यों ?"

"अगर होतीं तो उस निराधार छोकरी के आँसू भी तुम देख सके होते," वह बोली।

गोपाल मौन रहा।

"वह व्यथा, वह दुख तुम समझ नहीं सकते। कारण, तुम पुरुष हो।" तब भी गोपाल चुप रहा।

"मेरे गाँव में नन्दू नाम की एक विधवा रहती थी। बिचारी बचपन से ही वैधव्य भोग रही थी। संसार का सुख उसने देखा ही न

था। जब वह सयानी हुई तब चारों ओर का वातावरण उसे प्रलोभनों से भरपूर दिखाई दिया। उसके अंग-प्रत्यंग में यौवन फूटा पड़ता था। उसके घर के पास ही एक चालीस वर्ष का विधुर रहता था। नन्दू अपने ससुराल में रहती थी। उसका देवर उसे खूब चाहता था।

"एक दिन विधुर महाशय के प्रलोभनों का वह शिकार बन गई। वह स्वयं भी न समझ सकी कि उसने क्या किया है। जब उसे ख़बर पड़ी कि वह गर्भवती हो गई है तब तो उसके होश उड़ गए। धीरे-धीरे बातें होने लगीं। लोगों ने देवर पर यह दोष मढ़ा। और एक रात वह वहाँ से भाग गई। कहाँ भाग गई, यह आज दिन तक कोई नहीं जानता।"

तब भी गोपाल चुप था।

"तुम्हारे हृदय है ?" थोड़ी देर बाद पालू ने पूछा।

"मुझे ख़बर नहीं। आज दिन तक मैं अपने हृदय को नहीं पहचान सका," गोपाल बोला।

"तो तुम किसी के हृदय को नहीं पहचान सकोगे," उसने कहा। गोपाल सुनता रहा।

"तुम इतना भी नहीं समझ सके कि वह गूँगी लड़की तुम्हें कितना चाहती थी ?"

"यह मैं जानता था।"

"नहीं-नहीं, यह तुम नहीं समझे थे। समझे होते··जानते होते तो उस असहाय लड़की को वहीं छोड़कर इस प्रकार भाग नहीं आते।"

गोपाल चुप।

थोड़ी देर बाद वह बोला—

"अर्थात् तुम यह कहना चाहती हो कि यह काम, जो मैंने किया ही नहीं है, उसका साझीदार, उसका भागी मैं बनूँ ?"

"हाँ, इसमें क्या हर्ज था ?" वह बोल उठी।

गोपाल इसका उत्तर नहीं दे सका।

"चलो, मुझे यह गट्ठा उठवा दो, देर हो रही है।"

पालू के माथे पर लकड़ी का गट्ठा रखवाकर गोपाल उसके पीछे-पीछे, गहन विचारों में लीन, चलने लगा।

छायावाली गाड़ी में माताजी तथा भाभी चुपचाप बैठी हैं। पास ही अपना साफ़ा पैरों नीचे दबाए राधे बाबू मौन बैठे हैं।

"क्यों, सब ठीक-ठाक है न राधे ?" माताजी ने पूछा।

"हाँ, " राधे बाबू ने छोटा-सा उत्तर दे दिया। फिर गाड़ी वाले के पास से माचिस माँगकर बीड़ी जलाई और धूम्रपान करने लगे। पर उनका उतरा हुआ चेहरा स्पष्ट कह रहा था कि वे कुछ कहना चाहते हैं, पर जीभ चलती ही नहीं।

"घर तो घूरे-जैसा हो गया होगा ?" माताजी ने फिर पूछा। राधे बाबू मौन ही रहे।

"बहू तो बार-बार कहती थी कि चलना चाहिए गाँव को, पर राधे, ऐसे कैसे आ सकते थे। बीमारी ने ऐसा पीछा पकड़ा कि बड़े-बड़े डाक्टर बुलाए, पर आराम ही नहीं हुआ। मैंने कहा—इन डाक्टरों को छोड़ो और कोई अच्छा वैद्य तलाश करो, पर मेरी माने कौन ? अन्त में हारकर वैद्य को बुलाया। आठ दिन में ही अन्तर पड़ने लगा और बिलकुल ठीक हो गई।"

राधे बाबू चुपचाप सुनते रहे।

"और राधे, ऐसे वैद्य कि नाड़ी देखकर ही रोग परख लें। हाँ, उनसे ही बहू की दवा कराई है। नारायण करे और अब एक पुत्र को बहू के अंक में खेलता देखूँ, तो मेरा जीवन सफल हो जाय। फिर कहूँ—'हे नारायण, तैंने मेरी सारी मनोकामना पूर्ण की, अब मुझे कोई इच्छा नहीं। इस संसार से उठा ले।' "

राधे बाबू आँखें फाड़-फाड़कर आसपास के दृश्य देख रहे थे।

"फिर राधे, मैंने कहा, भैया, अब हम गाँव जायँगे। बहुत

रुके। वहाँ वह लड़का है, उसकी पढ़ाई बराबर चल रही है या नहीं, यह मुझे देखना है। घर को यों ही बिना देखभाल के छोड़कर आई हूँ, बहू को भी बुला लिया है। तब भी कहने लगे—अभी थोड़े दिन तो रहो ! बड़ी मुश्किल से निकल सकी राधे ! बहुत दिनों बाद घर पहुँच रही हूँ।"

राधे बाबू ने दूसरी बीड़ी जला ली।

"आज कितनी बीड़ियाँ पिएगा राधे ?"

"जी···जी···!" राधे बाबू मानो तंद्रा में से जगे। और फिर हाथ की बीड़ी बाहर फेंक दी।

"गोपाल है तो मजे में न ?"

मानो कुछ सुना ही न हो, वे आँखें फाड़कर बाहर के वृक्षों तथा धूल से भरे रास्ते को देखते रहे।

"सुना नहीं क्या ?"

"ओह ! गोपाल···हाँ-हाँ···ठीक है।"

"और मिश्राणीजी रसोई तो ठीक बनाती थीं न ?"

"जी ?"

"रसोई ?"

"जी हाँ, रसोई···बराबर।"

"वह लड़की ?"

"लड़की ?"

"गूँगी।"

"हाँ···गूँगी···"

"है न ?"

"नहीं···"

"नहीं ?"

"हाँ नहीं है न···" गुनगुनाते हुए, नदी के पानी में डूबते हुए मनुष्य की तरह अस्पष्ट शब्दों में राधे बाबू बोले और फिर मानो इन

सब प्रश्नों की परम्परा को रोकना चाहते हों, बोल उठे—"गाड़ी वाले !"

"जी !"

"अरे, कहाँ आए ?"

"गुलखेड़ी ।"

"गाँव अपना कितने मील दूर है भाई ?"

"सरकार, तीन-चार मील दूर ।"

"कब पहुँचेंगे ?"

"पहुँचेंगे ?"

"हाँ, बहरा है क्या ?"

"जी सरकार···दिन छिपते-छिपते पहुँचेंगे ।"

"ज़रा बैलों को चला न । इस तरह खिसकती गाड़ी तो रात के बारह बजे भी नहीं पहुँच सकती ।"

"सरकार !"

फिर गाड़ी वाले ने बैलों की पूँछ उमेठी और उनकी सत्तर पीढ़ियों की प्रशंसा करके कहा—"ओ—ओ···ओ···मर···रे···"

पर दाईं तरफ़ का बैल तो किसी प्रकार भी आगे बढ़ना नहीं चाहता था । वह इतना थक गया था कि गाड़ी वाले के डण्डे और गालियाँ सहन करने को तैयार था, पर गाँव की ओर चलने को तैयार न था । थोड़ी दूर जाकर उसने सत्याग्रह किया और पृथ्वी माता को दण्डवत् प्रणाम करने लगा ।

"ओह माई रे···," माताजी बोल उठीं ।

"अरे, क्या है यह ?" राधे बाबू बोले ।

"अरे मालिक, यह दायाँ बैल तो, मेरा बेटा···अरे तेरी नानी मरे तेरी···" कह गाड़ीवान नीचे उतरा और बैल को उठाने का भगीरथ प्रयत्न करने लगा, पर उसे तो अपनी नानी के मरने की चिन्ता थी नहीं, सो उसने तो पृथ्वी माता की गोद छोड़कर, खड़े हो, चलने को साफ़ इन्कार कर दिया ।

"चल मेरे बापू चल !" गाड़ी वाला पुचकारकर नम्रतापूर्वक कहने लगा।

"बैलों को गाली देता है तू ? क्यों, देख ले मजा," दाहिना बैल बाईं आँख मूँदकर मानो कह रहा था।

"मेरे बापू ! उठ मेरे बापू !!"

समाधि में हो, ऐसे बैल ने सुना ही नहीं।

गाड़ी वाला सिर पीटकर बोला—"क्या करूँ बाबू ! इन बैलों से तो मेरी नाक में दम आ गया।"

"अबे, काफ़ी खाने को नहीं देता होगा।"

"अरे सरकार ! ऐसा भी हो सकता है ? रोज़ का रुपया खर्चता हूँ बाबू जी !"

दाहिने बैल ने गरदन हिलाकर मानो सूचना दी कि यह बात सर्वथा असत्य है। गाड़ीवान चार आना भी खर्चता नहीं है और यदि इसकी साक्षी चाहते हो तो बाएँ बैल को पूछ देखो।

"ले भाई, चल अब तो !" ऐसा कहकर गाड़ीवान ने गाड़ी में से घास निकालकर दाहिने बैल को डाला।

यह देख बाएँ बैल को ईर्ष्या हुई, इससे वह भी बैठने का डौल करने लगा।

"लो, मेरा बेटा यह भी काबू से निकलने लगा," और ऐसा कहकर उसे भी घास का पूला डाल दिया।

खाद्य-क्रिया पूरी करके दायाँ बैल खड़ा हुआ और फिर गाड़ी तीव्र गति से मार्ग पर दौड़ने लगी।

"देखा न तैंने, बैलों को पूरी तरह खिलाता नहीं तू ! इसी से तो वे चलते नहीं," राधे बाबू बोले।

"ऐसा ही होगा साहब !" गाड़ी वाला बोला।

पर ज्यों-ज्यों गाँव समीप आता था, त्यों-त्यों राधे बाबू के चेहरे का रंग बदलता जा रहा था। ये सारी बातें माता से तो कहनी ही चाहिएँ,

नहीं तो वे समझेंगी, राधे भी गज़ब का है, सारी बातें कहीं क्यों नहीं।

"माँ···"

"क्या है ?" माता ने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"कुछ कहता था न ?"

"हाँ··हाँ··इस बरसात में घर खूब टपकता था।"

"तो मज़दूर को बुलाकर ठीक क्यों नहीं कराया।"

"मुझे बहुत मालूम है न ?"

"तो गोपाल को भेजकर···"

"गोपाल··वह तो··"

"क्या ?"

"वह तो नहीं है।"

"नहीं !"

"हाँ···नहीं···"

"क्यों ? कहाँ गया ?"

"भाग गया।"

"भाग गया ! क्या कहा ?" विस्फारित नेत्र माता ने पूछा।

भाभी साश्चर्य नेत्रों से पति के मुख को घूँघट में से देख रही थीं। घबराहट के चिह्न स्पष्ट रूप से उनके मुख पर दिखाई देते थे। भाभी का हृदय धड़कने लगा और शंका से उसका मन घिर गया।

"हाँ····" राधे बाबू बोले।

"पर भाग जाने का कारण ?"

"अँ····अँ····वह तो···कुछ खास नहीं, पर···"

"पर क्या ? कह डाल न !"

"गूँगी···"

"भाई राधे, तू तो वैसा-का-वैसा ही रहा। साफ़-साफ़ कुछ भी नहीं कहता।"

"भाई...घर जाकर मिश्राणीजी से पूछ लेना न," वे बोले।

थोड़ी देर में गाँव के घर दिखाई देने लगे और दो-चार मिनट पीछे वे घर के पास आ पहुँचे।

भाभी के पैर किसी तरह उठते न थे। यह घर गोपाल के बिना बिलकुल सूना-सूना लगेगा, ऐसा उन्हें लगा। गूँगी के विषय में क्या बात थी, यह वे समझ नहीं सकीं।

सामने ही मिश्राणीजी खड़ी थीं।

"आओ, आओ माँ, तुम्हारे बिना तो यह घर...." और फिर हाथ के ऐसे झटके किये जिनका अर्थ समझना मुश्किल था।

भाभी की बात बिलकुल सच निकली। उन्हें घर सूना-सूना लगने लगा, पर जब मिश्राणीजी ने अपनी शिष्ट भाषा में सारी कथा सुनाई तब भाभी का दिल बैठ-सा गया। आशंकाओं के बीच में उनका मन झोंके खाने लगा। वे यह बात मानने को तैयार नहीं थीं। गोपाल ऐसा काम करेगा ही नहीं। फिर भी मिश्राणीजी जो कहती हैं!

"अरे हाँ माँ, अपनी मेरी इन्हीं आँखों देखा है न।"

"प्रभु-प्रभु! तू करे सो ठीक।" माता बोलीं और फिर वे स्नान करके पूजा करने चली गईं। पर उनको किसी प्रकार चैन नहीं पड़ा। उनके ही घर में ऐसा पाप-कर्म हो गया, इससे भीतर-ही-भीतर उनका मन जलने लगा।

जैसे-जैसे रात्रि बढ़ती जाती थी, वैसे-वैसे भाभी का हृदय अधिकाधिक व्यथा अनुभव करने लगा।

पति के पास जाकर उनसे सारी बात जानने की उनकी इच्छा थी, पर पतिदेव तो एक शब्द भी इस विषय में बोले नहीं, इसलिए भाभी भी यह बात पूछने की हिम्मत नहीं कर सकी।

थोड़ी देर बाद पतिदेव की नासिका बोलने लगी। बार-बार भाभी को गोपाल याद आने लगा। रात के समय, उसकी खाट के पास आकर गोपाल अपनी दिनचर्या कहता। सारे दिन में की हुई

मस्ती की हकीकत कहता, सुखपाल की बाड़ी में से कितने अमरूद तोड़े, सेठजी के बगीचे में से कितने केले और जामुन उड़ाए—ये सभी बातें गोपाल भाभी से कहता।

पर उसने उस रात की बात नहीं कही थी। वह क्या सचमुच उस छोकरी के साथ घूमने गया था? नहीं-नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता। अगर ऐसा होता तो गोपाल अवश्य मुझसे कहता···और अनेक चिन्ताओं के कारण रात के दो बजे उनकी आँख लग पाई, पर बारम्बार नींद में भी चौंककर वह जाग उठतीं।

पंडित गजानन महाराज स्नानादि से निवृत्त हो पूजा में बैठे थे। भारी गोलमटोल उनका शरीर हाथी की तरह झूमता था और वे अपने शरीर पर गोपी चन्दन चुपड़ते "नमः शिवाय, नमः शिवाय" मन्त्र का उच्चारण करते थे।

सामने पट्टे पर शिव-लिंग विराजमान था। दूसरी दो-चार तसवीरें भी पट्टे पर शोभायमान थीं। घी के दो सुन्दर दीपक जल रहे थे। "ओम् नमः शिवाय" मन्त्र के साथ अपने शरीर को हिलाते पंडित जी अब अगरबत्ती प्रज्वलित करने लगे।

फिर पद्मासन लगा भगवान् की पूजा करने लगे—

"ओम् दधि स्नानं-दधि-स्नानं, जल-स्नानं-जल-स्नानं"

यह सारी क्रिया करते हुए भी उनका मन न जाने कहाँ चक्कर काट रहा था। कभी सती का विचार आता। कैसी दुर्बल हो गई है? कुछ खाती है न पीती है और आँसू बहाया करती है। ऐसा क्या हुआ है, जिससे यह ऐसी हो रही है?

भगवान् को स्नान करा, उनको सिंहासन में बिठा फिर "ओम् ह्रीं ह्रीं" आदि मन्त्र बोलने लगे।

आँखों के सम्मुख वह चन्दा आ गई। हाथ के झटके से उस मूर्ति को मानो हटाने का प्रयत्न करने लगे, पर ज्यों-ज्यों वे चन्दा को अपनी मनःचक्षुओं के सामने से हटाने का प्रयत्न करते थे, त्यों-त्यों वह अधिक

सामने आती थी—मानो भिक्षा माँगती, आँसू गिराती, अपनी निराधार स्थिति को दिखाती—फटे हाल, बाल आकाश में उड़ते, पील चेहरा, दीन-हीन दया की याचना करती कोई स्त्री···

पुल पर हुई मुलाकात उनको याद आने लगी। टेकरी के ऊप चढ़ती चन्दा उनकी दृष्टि में आने लगी और फिर तो उनके घर के साम ही आकर मानो वह खड़ी हो गई। उनकी भुजाओं में फँसी हुई चन्द उन्हें आजिज़ी करती दिखाई दी। और फिर एकाएक द्वार खुला "कौन?" धक्के देकर निकाली हुई चन्दा रोने लगी और 'डाकिन 'डाकिन' कहकर उन्होंने घर में प्रवेश किया और सती से कहा—"पानी लाओ, पानी! शम्भो, शम्भो! तुमने ही बचाया मेरे प्रभो!!"

पर वे सचमुच बचे? सवेरे के चार बजे नाव में बैठी हुई चन्दा ओह!!

उन्होंने अपने गालों पर दो-चार चांटे लगा दिए और बोल उठे—

"हरि, हरि! यह क्या? क्षमा करना मेरे प्रभो! शम्भो! शम्भो

फिर वे शम्भु की स्तुति गाने लगे। आरती हाथ में लेकर, आरती उतारने लगे—"जय शंकर देवा—जय शंकर देवा!" पर जाने क्यों वह छोकरी आँखों के सामने से हटती ही नहीं थी। अब उसका स्वरूप बदल गया है। पीत-मुखी वह पीड़ाग्रस्त है। राक्षसी की तरह वह उनके सामने बढ़ती आती है—"ओह प्रभु! यह क्या?" यह कहकर पंडितजी ने अपने दोनों नेत्र बन्द कर लिए। पर वह महान् राक्षसी तो मानो उनकोखाने दौड़ती ही आ रही है। स्पष्ट दिखाई देती है। एकाएक उन्होंने आँखें खोल दीं।

सामने ही सती खड़ी थी। "मुझसे सच नहीं कहोगे?" उसने पूछा।

पंडितजी बेचारे इस अकल्पित प्रश्न से एकदम घबरा गए।

"हैं-हैं—क्या?" वे बोल उठे।

"यह कार्य गोपाल ने ही किया है?"

"गोपाल ने नहीं तो क्या मैंने किया है ?" पंडितजी खीझकर बोल उठे।

"मैं ऐसा नहीं कहती, पर झूठा दोष उसके ऊपर किसलिए मढ़ते हो ?"

"झूठा ? झूठ मैं बोलता हूँ ? हे शम्भो ! तू करे सो ठीक ! इस स्त्री से तो तोबा मेरे प्रभो !" वे बोले। पर ये शब्द इतने ढीले थे कि सती पति के मुख को देखती रही।

पंडितजी उन आँखों के समक्ष देख नहीं सके। एकाएक वहाँ से खड़े हुए और घर के बाहर निकल गए।

सती कोई महान् निश्चय करने का प्रयत्न करती हो, ऐसा लगता था। उसकी आँखें एक अजब तेज से भरपूर लगती थीं।

आज कितने ही दिनों से उसे कहीं चैन पड़ता नहीं था। बारम्बार उसे गोपाल याद आता है। गोपाल के याद आते ही चन्दा की स्मृति हो आती है और फिर उसकी कल्पना में उस अनाथ छोकरी के दुख तैरने लगते हैं। वह भी भाग गई है। ऐसी स्थिति में वह कहाँ भटकती होगी ?

अपने गाँव में उसने ऐसी अनेक बातें सुनी थीं। उसी के गाँव में ऐसी एक छोकरी ने कुँए में गिरकर आत्म-हत्या कर ली थी।

उसने आत्म-हत्या तो नहीं की होगी ? उसने बालक का क्या किया होगा ? और फिर एक सुन्दर बालक का मुख उसकी आँखों के सम्मुख झूलने लगा।

इसी समय किसी ने दरवाजा खटखटाया।

"कौन ?" सती बोली।

"यह तो मैं हूँ माँ, कान्हा !"

"ओह ! कान्हा ?"

"हाँ, माँ !"

"कब आया रे ?"

"यह चला ही आता हूँ। गाँव से काम के लिए यहाँ आया था। सोचा, सती माँ के दर्शन करता चलूँ। बहुत दिनों से दर्शन नहीं हुए थे।"

"सब कुशल है न?"

"हाँ, माँ! पर आप कैसी हैं?"

"ठीक हूँ।"

"नहीं माँ! सच कहो। आपका शरीर ठीक नहीं लगता।"

"ठीक ही है भाई!"

"ना माँ, मुझसे छिपा नहीं सकतीं।"

"कान्हा!"

"जी!"

"तू मेरा काम करेगा क्या?"

"तुम्हारे लिए माँ, यह जीवन भी दे दूँ! गाँव में था तब आपने ही मेरे घर की सँभाल रखी थी। मैं तो चार वर्ष से कैद में था। तुमने सँभाल न ली होती तो मेरी स्त्री और बच्चों का क्या हाल होता, क्या यह मैं नहीं जानता?"

"तो मेरा काम करेगा?"

"आप बोलो माँ! मैं करूँगा।"

"तुझे नाव चलाना आता है?"

"हाँ-हाँ! ऐसा आता है कि कैसा ही पूर हो; उसमें भी ले जाऊँ।"

"तो मुझे फिर मिलना, काम है।"

"अच्छा माँ!" सती को प्रणाम करके कान्हा चल दिया। सती को अपना छोटा-सा गाँव याद आया। घर के पास ही आया हुआ कान्हा का घर स्मरण आया। किसी झूठे इलज़ाम में फँसाकर उसको दिलाई हुई महाजन की चार वर्ष की कैद याद आई और उसकी पत्नी-बच्चों की दुर्दशा याद आई। चुपचाप वह उनकी मदद करती। और जेल में से छूटकर जब वह घर आया तब पत्नी के मुख से सती की

बातें सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह एकदम दौड़ा था और सती के चरणों में माथा रखकर रो पड़ा था।

बारह

श्मशान की झाड़ी में आत्म-हत्या करने का प्रयत्न करती चन्दा ने पत्थर उठाकर चाकू पर मारने के लिए हाथ अवश्य उठाया, पर वह ऐसा कर नहीं सकी। एक सुन्दर बालक मानो उसके सामने आकर करुणा-भरे नयनों से उससे विनती करने लगा—"मैंने क्या दोष किया है माँ! मुझे मत मार—माँ···" और माता का हृदय! माता का वात्सल्य मानो जीता और पत्थर की चोट वह नहीं कर सकी। चाकू उसने फेंक दिया। फिर वह वहाँ से खड़ी हुई और नदी की ओर चलने लगी।

नदी का जल खल-खल करता बह रहा था। सियारों का रुदन श्मशान में से सुनाई देता था। पास के एक वृक्ष पर उल्लू बोल रहा था।

ऐसी काली अंधेरी रात्रि थी। गोपाल के साथ वह इसी स्थान से ही नाव में बैठकर सेठजी की बगीचीं तक गई थी। वहाँ मीठे, पके फल उसने खाए थे। गोपाल ने उसकी जीवन-रक्षा की थी। उसका मन गोपाल के लिए स्नेह और श्रद्धा से भर गया।

कहाँ होगा गोपाल, उसका मन पूछ उठा। बालक फिर स्पन्दन करने लगा। "डर मत, डर मत लाल! अब तो तुझे जीवन की तरह रखूँगी," वह बोल उठी।

स्नेह और सन्तोष की ऐसी एक लहर उसके रोम-रोम में व्याप्त हो

गई कि एक क्षण वह एक पत्थर पर बैठी नदी के काले जल को देखती रही। थोड़े समय पहले की व्यथा, दुख और पीड़ा जाने कहाँ भाग गए थे।

उसे लगा—उसने कोई पाप नहीं किया था। वह बिलकुल निर्दोष थी। रात्रि के समय, अनजाने स्थान पर, अनिच्छा से किसी दुष्ट के पंजे में फँसकर उसके शरीर में जो हो गया, उसके लिए विधाता दोषी है। उसका उसमें क्या दोष था? और बालक का तो इसमें लेश-मात्र अपराध नहीं। किसलिए इसे तिरस्कृत करूँ? नहीं-नहीं! कैसी मूर्ख और पगली हूँ? मरना चाहती थी—मरने का यत्न करती थी।

और फिर उसे उस घर में बिताए दिन याद आने लगे। गोपाल! गोपाल!! क्यों वह व्यर्थ भाग गया था? यदि ईश्वर ने उसे वाक्-शक्ति दी होती तो वह गोपाल के चरणों में पड़कर कहती—"मैं जानती हूँ तुम्हारा दोष नहीं है। यह तुमने नहीं किया है। इसमें मेरा भी दोष नहीं......"

पर इतना होने पर भी तुमको चाहती हूँ। अपना सारा जीवन मैं तुम्हें सौंपने को तैयार हूँ। चलो, कहीं दूर—बस्ती से बहुत दूर चले चलें—टीका-कटाक्ष करते जनसमूह से दूर जंगल में। वहाँ एक सुन्दर झोंपड़ा बनाकर हम रहेंगे।

इस बालक पर तुम पिता-जैसा ही स्नेह रखना। इसको अपने अंक में भर लेना।

भले ही संसार तुम्हें दोष लगा दे। उसे तुम सह लेना। मेरे स्नेह को स्वीकार कर लेना। चाहोगे न मुझे, वह पागल की तरह बड़बड़ाने लगी।

फिर एकाएक विचार आते ही चलने लगी। उसके पैर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने लगे। नदी के तीर-तीर वह आगे चलने लगी।

आम के झाड़, जामुन के बड़े-बड़े वृक्ष, यह बाँस का वन—पवन का सन्नाटा वन में कैसा संगीत पैदा कर रहा है? उसे सारी सृष्टि

चेतनामय और आह्लादकारक लगने लग

यह आई सेठजी की बगीची। भूतकाल के मधुर संस्मरण उसे याद आए। वह बगीची की ओर देखती रही। इसी स्थान पर खड़ी थी नौका। गोपाल उस ओर से बगीची में घुसा था। नाव में बैठी-बैठी वह उसकी प्रतीक्षा करती थी। जब वह फल लेकर आया तब उसने शान्ति की साँस ली और फिर उसने कितने फल खाए थे? गोपाल तो चुपचाप नाव में बैठा था, पर उसके हृदय में उसी समय से उसके लिए स्नेह और श्रद्धा के भाव उत्पन्न हुए थे। और बाद के दिन?

वह आगे चलने लगी। अब तो नदी सपाट मैदान में होकर आगे जाती थी। वह भी नदी के किनारे आगे बढ़ने लगी। नींद या थकान का नामो-निशान भी उसे मालूम नहीं हो रहा था। वह तो बस नदी के किनारे-किनारे अग्रसर हो रही थी। आकाश में फिर से बादल दिखाई पड़ने लगे थे। तारे एक-एक करके बादलों के काले समूह में ढक गए। पवन ज़ोर से चलने लगा, पर आज उसे प्रकृति का यह दृश्य अत्यन्त मनोहर और सुन्दर लगने लगा।

बालाजी की टेकरी आई। वह आगे बढ़ती ही रही—बढ़ती ही रही। नदी अब फिर से एक वन में प्रवेश करती थी। वह भी नदी के तीर-तीर वन में घुसी। जब वन में से बाहर आई, तब पानी पड़ने लगा था। नदी के किनारे दो-चार झोंपड़े थे। एक दीपक टिम-टिम जल रहा था।

नदी के किनारे यह झोंपड़ी देख उसके मन में अनेक विचार आने लगे। ऐसी ही उसकी झोंपड़ी होगी। गोपाल के साथ वह रहती होगी। पालने में बालक सो रहा होगा। ऐसा ही नन्हा-सा दीपक टिमटिमाता होगा।

इसी समय झोंपड़े में बालक रोने लगा। "अरे, सुनती नहीं क्या?" किसी पुरुष का स्वर कान में पड़ा।

"उँह" मन्द स्वर।

"अरे, रोता है, उठ न!"

"उँह"

"उँह-उँह करती है—अरे उठ न!"

"तुम्हीं झुला दो न।"

"पर इसे भूख लगी जान पड़ती है।"

"ओह! सोने भी नहीं देते।" कहती हुई कोई स्त्री बोल रही है। उसकी चूड़ियों की झंकार सुनाई देती है। और फिर माता लोरी गाने लगती है।

चन्दा का मन गद्गद हो गया। 'हे प्रभु!' वह मन में बोली, 'मेरा भी ऐसा भाग्य होगा? मैं भी अपने बालक को इस प्रकार लोरी गाकर सुला सकूँगी?'

फिर उसका मन पुनः आशंका से घिरने लगा। वह बिलकुल अकेली है, निराधार है। उसका कोई नहीं और आज इसी यात्रा में बालक जन्मने को हो तो क्या करूँगी। हे प्रभो! तू ही लज्जा रखना! और गोपाल मिलेगा? मिलेगा तो उसे स्वीकार करेगा? उसे धक्के देकर नहीं निकाल देगा? अनेक विचार आकर उसे व्यथित करने लगे। एक क्षण वह वहीं खड़ी रही।

"बुखार मालूम होता है, छोकरे को," अन्दर से स्त्री की आवाज आई।

"इसमें डरती क्यों है? इसके रामजी रक्षक हैं।"

'रामजी रक्षक हैं', ये शब्द बारम्बार उसके कानों में गूँजते रहे। उसे किसलिए डरना चाहिए, वह सोचने लगी। आज दिन तक जिसने रक्षा की है वही रक्षा करेगा, वह कहने लगी और फिर जाने कैसे उसके पैरों में शक्ति आ गई, वह आगे बढ़ने लगी।

सवेरे के चार बजे होंगे। चन्दा द्रुत गति से टेकरियों पर चढ़ती आगे बढ़ती जाती थी।

एकाएक उसे दर्द होने लगा। हे राम! यह क्या? वह बोली। यह दर्द किसका? इस वन में, बीहड़ वन में ही बालक पैदा होगा? क्या करूँगी नाथ! और वह रोने लगी। उसकी सारी हिम्मत, उसका सारा धैर्य, उसकी सारी श्रद्धा मानो भागने लगी।

थोड़ी देर बाद स्वस्थ होकर वह आगे चलने लगी। यह पर्वत-श्रेणी दिखाई देती है। नदी का स्वरूप अब अधिक निकट होता दिखाई पड़ता है। थोड़ी देर में मूसलाधार पानी पड़ने लगा। ठंड से वह थर-थर काँपने लगी। वृक्षों के पत्ते की तरह उसकी देह थरथराने लगी; पर तब भी वह हिम्मत करके आगे चलती रही। हिम्मत हारे तो कहीं की न रहे, उसका मन, उसकी आत्मा पुकार-पुकारकर कहने लगी।

अब तो दर्द भी धीरे-धीरे बढ़ रहा है। 'ओ मां! यह तो सहन नहीं होता।' आधा मील दूर तक यह जंगल आता है। हवा के झोंके, हवा की साँय-साँय उसको तीर-सी लग रही है। आकाश में बिजलियाँ चमक रही हैं और बादल गरज रहे हैं। वृक्ष इधर-से-उधर झूल रहे हैं मानो जड़ से ही उखड़ जायँगे। वह एक पत्थर पर बैठ गई। पानी का वेग बढ़ने लगा। थोड़ी देर में सर्वत्र पानी-ही-पानी हो गया। लो, यह नदी में बाढ़ भी आने लगी। पर्वतों पर दूर-दूर से जाने कब का पानी पड़ता हो, ऐसे नदी का जल वेग से बढ़ने लगा और देखते-देखते नदी का पानी उछलता हुआ आसपास की भूमि को छिपा लेने का प्रयत्न करने लगा। नदी का किनारा पानी से ढक गया। जिस पत्थर पर वह बैठी थी वहाँ भी पानी आने लगा। 'हे राम!' वह बोली। उसकी पीड़ा धीरे-धीरे बढ़ने लगी। सवेरे के पाँच बजेंगे, पर निबिड़ अन्धकार चारों ओर फैला हुआ है। हिम्मत करके वह फिर से खड़ी हुई और आगे बढ़ने लगी।

पंडित गजानन महाराज घर के बाहर तो निकले, पर उनको कहीं

चैन पड़ा नहीं। बारम्बार सती के शब्द उनके कानों में गूँजने लगे—"मुझसे सच नहीं कहोगे ? झूठा दोष किसलिए किसी के मत्थे मढ़ते हो ?" सती का वह निस्तेज चेहरा भी, अग्नि के अँगारों-जैसी दीखती उसकी आँखें मानो उनको जलाकर भस्मीभूत करना चाहती हों, ऐसा उन्हें लगा। घर में से निकलकर राधिकाजी के मन्दिर में पहुँचे। राधिकाजी की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—

"हे माता, मुझे बचाओ। क्या करूँ मैं ?"

पर वहाँ से भी उनको कोई जवाब नहीं मिला।

"क्यों पंडितजी ?" पुजारी ने पूछा।

"जी !" पंडितजी बोल उठे।

"आज तो इस तरफ़···?"

"हँ···दर्शन करने···।"

"अच्छा-अच्छा। रोज़ दर्शन करने आया करो, तुम्हारे सारे पाप नष्ट होंगे।"

"हाँ, महाराज ! पापों के ढेर किए हों, ऐसे मनुष्य भी तर जायँ, फिर मैं···"

"हरे-हरे पंडितजी ! यह क्या कहते हो ! तुम और पाप ? पाप तो तुम से सौ गाँव दूर भागे। और फिर महाराज, तुम्हारे-जैसे मनुष्यों के पास तो पाप भी पुण्य बन जाय।"

"हँ-हँ, मस्करी करते हो आप तो गरीब ब्राह्मण की।"

"नहीं बापू ! तुम्हारी मस्करी मैं कर सकता हूँ ? तुम गाँव के पंडित। तुम्हारी हँसी करने वाला तो सीधा स्वर्ग में···अरे···क्षमा करना, घोर नर्क का भागी हो।"

पंडितजी ने जवाब नहीं दिया। उनको लगा, आज सम्पूर्ण सृष्टि उनका उपहास कर रही है।

जब वे राधे बाबू के घर पहुँचे तब वे नाक पर चश्मा चढ़ाए अपना काम कर रहे थे।

"जै-जै राधे बाबू !" पंडितजी बोले ।

"ओ हो ! पंडितजी !"

"हाँ जी ।"

फिर बहुत देर तक राधे बाबू कुछ नहीं बोले । सारे घर में एक विचित्र विषाद की गहरी छाया फिर गई हो, ऐसा पंडितजी को लगा । थोड़ी देर बाद राधे बाबू ने पूछा—

"गोपाल का कहीं पता लगा या नहीं ?"

"गोपाल ?" मानो निद्रा से जगे हों, इस प्रकार पंडितजी बोले— "अरे बाबू, उसका पता कहीं लग सकता है ? वह कम्बख़्त न जाने कहाँ भाग गया होगा, किसे ख़बर ?"

इसका उत्तर राधे बाबू ने कुछ नहीं दिया ।

दूसरे घर में जाकर पंडितजी ने माताजी को प्रणाम किया । पर वहाँ भी वैसा ही शोकपूर्ण और विषाद का वातावरण छाया हुआ दिखाई दिया । पंडितजी वहाँ अधिक देर रुके नहीं । गाँव में चल दिये, पर किसी भी प्रकार उनको चैन नहीं पड़ा ।

घर आकर पत्नी से कहने लगे—

"आज भूख नहीं है, भोजन नहीं करूँगा ।"

"अच्छा !"

"आज इतना अधिक आटा क्यों गूँथा है ?" पति ने पूछा ।

"कान्हा आया है ।"

"कान्हा आया है ?"

"हाँ ।"

"यहीं भोजन करेगा ? रोटियाँ बाँध नहीं लाया ?"

"लाया होगा, पर यहीं खाना है ।"

"हाँ हाँ, यहीं खावे न ? और कहाँ खावे ? ठीक है । तुम्हारे गाँव का आदमी, तुम्हीं उसकी आवभगत न करो तो कौन करे । बिचारा गरीब आदमी तुम्हें खूब चाहता है, फिर······" और यह कहकर

पंडितजी हँसे।

सती समझ नहीं सकी कि ये शब्द कटाक्ष में कहे गए हैं या सचमुच मन से। पंडितजी सो जाने का ढौंग करके पड़ गए, पर नींद उनको आई ही नहीं। कब तक विचारों के भँवर में डुबकियाँ खाते रहे। बारम्बार चन्दा राक्षसी के रूप में उन्हें खाने दौड़ती हो, ऐसा उन्हें अनुभव होता रहा। अन्त में चैन न पड़ने पर फिर उठे और नदी की तरफ चल दिये।

बहुत रात बीतने पर भटकते-भटकते वे आये और बोले—

"भूख नहीं है, खाऊँगा नहीं।"

"क्यों ?" सती ने पूछा।

"भूख नहीं है।"

"कहाँ खा लिया है ?"

"हाँ, मेरे तो अनेकों घर हैं, एक नहीं, पर अनेक सतियों के घर हैं, जिन घरों के द्वार सदैव खुले ही रहते हैं। वहीं मुझे तो पेट भरकर मिल जाता है," वे बोले।

सती ने इसका कुछ भी जवाब नहीं दिया।

दो बजे कान्हा आया था। उसे जिमाकर सती ने सारा भोजन ढक दिया था। उसे भी खाने की इच्छा नहीं थी और जब पंडितजी ने सन्ध्या को खाने से भी इन्कार कर दिया तब उसने भी कुछ नहीं खाया।

रात के एक बजे होंगे। पंडितजी भूखे पेट इधर-से-उधर करवटें बदलते अन्त में सो गए थे। उनकी नासिका सारे घर की निस्तब्धता को भंग कर रही थी। सती स्नान करके कभी की पूजा-घर में पूजा कर रही थी। एक दृढ़ निश्चय से उसकी आँखें प्रज्वलित हो रही थीं। एक बजे घर के सारे दरवाजे धीरे-से बन्द करके वह नीम के नीचे आ खड़ी हुई। उसने ऊपर देखा, आकाश में कोई-कोई बादल इधर-

उधर दौड़ रहे थे। थोड़े-बहुत तारे भी दीख पड़ते थे। नीम का पेड़ निःस्पंद खड़ा था। थोड़ी देर में द्वार पर खट-खट की आवाज़ हुई।

सती ने आँगन छोड़कर द्वार खोला। एक मनुष्य ने अन्दर आकर सती की चरण-रज ली और बोला—"चलिए माँ, सब तैयार है।"

"चल," सती बोली।

दोनों गली में आकर खड़े रहे। सती ने घर का दरवाजा अटका दिया और गली पारकर टेकरी पर आकर खड़े हुए।

"धीरे उतरना माँ," कान्हा बोला।

सती टेकरी पर से धीमे-धीमे नीचे उतरने लगी। नीचे उजाड़ का पानी भयंकर ध्वनि करता दौड़ रहा था।

दोनों पुल पर आए और पुल पार करके पीपल के वृक्ष के पास पहुँचे। वहाँ एक नाव खड़ी थी।

"सावधानी से चढ़कर बैठो माँ!" कान्हा बोला। सती कूदकर नाव पर चढ़ गई और एक ओर बैठ गई। फिर कान्हा भी उसमें आकर बैठा।

"किस ओर हाँकूँ?" उसने पूछा।

"इधर सीधे, जिधर नदी बही जाती है, उसी दिशा में ले चल भाई!" सती ने दृढ़ स्वर में कहा।

"अच्छा!"

नाव चलने लगी। कान्हा दोनों हाथों में पतवारें लेकर ज़ोर से नाव हाँकने लगा। बाँस का वन आया, श्मशान आया। वहाँ से सियारों का रुदन सुनाई देने लगा। फिर बाँस का जंगल, और यह आ गई सेठजी की बगीची। वहाँ से भी नौका नदी के पानी में झोंके खाती हुई आगे बढ़ने लगी।

सती पद्मासन लगा प्रार्थना में लीन हो, ऐसा लगता था। कान्हा नाव को आगे बढ़ा रहा था। नदी का गहरा जल उछलता-कूदता आगे बढ़ रहा था। यह बालाजी की डूँगरी भी निकल गई।

तीन-साढ़े तीन बजे आकाश बादलों से घिर गया और बिजली

चमकने लगी।

"माँ, तूफ़ान आएगा, ऐसा मालूम होता है।"

"आने दे भाई, जो उसकी इच्छा होगी, वही होगा।"

देखते-देखते बादल गड़गड़ाहट करने लगे और आकाश में वृत्र और इन्द्र का तुमुल युद्ध जम गया। पानी ज़ोर से पड़ने लगा। नाव में बैठे हुए दोनों पानी से भीग गए। अब तो हवा भी ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी। पानी का वेग बढ़ने लगा, मूसलाधार वृष्टि होने लगी और पानी नाव में भरने लगा।

"माँ!"

"भाई!"

"नदी की गर्जना सुनाई देती है?"

"सुनती हूँ।"

"पीछे से पूर आ रहा है—भयंकर पूर है।"

"विश्वास रख, कुछ नहीं होने का।"

"तुमको तैरना आता है?"

"हाँ, आता है।"

"बस, यही मुझे चिन्ता थी। अब निश्चिन्त बैठी रहो।"

गर्जना करता, सौ घोड़े पूरे वेग से दौड़ाता पूर बढ़ता आ रहा था··· साँय-साँय करती हवा का सन्नाटा, ज़ोर की बाढ़! एक ही सपाटे में नाव उलट गई।

"माँ!" कान्हा चीत्कार कर उठा।

"डर मत, मुझे तैरना आता है।"

"ऐसी बाढ़ में तैर सकोगी?"

"हाँ।"

"हाथ पकड़ूँ माँ।"

"नहीं, मैं कह दूँगी जरूरत पड़ेगी तो।"

पर पानी का वेग इतना तीव्र था कि वे दोनों पूर के साथ बहने लगे।

"माँ, उस ओर भवँर है, सँभलना ।"

सती महान् प्रयास से बचने की चेष्टा करने लगी, पर जल का वेग उसे उसी ओर घसीटे लिये जा रहा था ।

"माँ !"

"हाथ दे अपना कान्हा !"

पर कान्हा हाथ बढ़ावे, इससे पहले ही सती भवँर की तरफ़ चलने लगी ।

नदी के किनारे एक झाड़ के नीचे, ठण्ड से थर-थर काँपती पानी से भीगती, चन्दा प्रसव-वेदना से व्यथित थी । थोड़ी ही देर में बालक जन्मेगा, यह उसे निश्चय हो गया था, पर अपनी ऐसी असहाय और निराधार स्थिति देखकर चन्दा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी ।

"हे प्रभु ! क्या होगा मेरे बच्चे का ?" वह मन-ही-मन सोचती थी ।

आकाश का युद्ध किसी प्रकार शान्त होना नहीं चाहता था । आकाश में बिजली चमककर इस निराधार स्त्री को देख, हँसकर चली जाती थी । जैसे-जैसे उसकी प्रसव-वेदना बढ़ती थी, वैसे-वैसे प्रकृति का रूप भी अधिक भयंकर उसे लगता था ।

'ओ माँ' वह मन में बोली । उसे लगा—ईश्वर ने उसे गूँगी बनाया है । वह अपने हृदय की ज्वाला भी प्रकट कर सके, यह भी नहीं ।

इस स्थान से थोड़ी ही दूर टेकरी पर पालू की झोंपड़ी थी । गोपाल इसी समय जंगल की तरफ जा रहा था । एकाएक उसे सुनाई दिया मानो कोई गुनगुना-सा रहा है । बार-बार चमकते बिजली के प्रकाश में वह उस तरफ़ जाने लगा ।

"कौन ?" उसने पुकारा ।

अपनी ही भाषा में चन्दा ने अपनी निराधार स्थिति दिखाई । गोपाल उस तरफ़ बढ़ा । बिजली के प्रकाश में उसने एक फटे हाल स्त्री

को झाड़ के नीचे पड़े हुए देखा।

"कौन चन्दा ?" वह बोल उठा।

"गोपाल !" चन्दा मन-ही-मन बोली।

"छिः छिः इस स्थिति में ?" गोपाल बोला। उसने देखा कि चन्दा ···गर्भवती है···और····अनेक विचार एक क्षण में ही उसके मन में दौड़े···यह दुष्ट छोकरी अभी भी उसका पल्ला छोड़ना नहीं चाहती··· खुद का किया हुआ पाप···इस पाप का बोझा लेकर वह फिर से मुझे फाँसने यहीं आ पहुँची है····मुझे यह छोड़ना चाहती ही नहीं···मुझे यह बदनाम करना चाहती है। मेरे ऊपर यह कलंक सदैव लगा ही रहे, इसीलिए यह यहाँ आई है। ये विचार आते ही आगे बढ़ने के बदले गोपाल विरुद्ध दिशा में चलने लगा।

बिजली का प्रकाश—और चन्दा ने देखा, जिसके लिए वह जीवित रही है, जिसके लिए वह अपना जीवन-सर्वस्व देने को तैयार हुई है, जिसे वह हृदय ले चाहती है, जिसके कारण अपना जीवन उसने अटका रक्खा है, वही गोपाल उसका तिरस्कार करता चला जा रहा है···यही एक क्षण है अब यदि उसके पास वाचा होती तो उसे वह बुला सकती। उससे माँफी माँग सकती। ओह ! यह भयंकर प्रसव-वेदना, यह निराधार परिस्थिति और मर-पचकर जब उसका देवता उसे मिला है, उसी क्षण पीछे लौटा जा रहा है। चन्दा ने प्राणपण से बोलने का प्रयास कर आवाज़ दी—

"ग····गो···गो···प···पा···ल····!"

उसकी वाणी खुल गई।

"गोपाल !" वह फिर बोली।

ये शब्द हज़ार बिच्छू की तरह उसे डसने लगे। यही गूँगी चन्दा इतने दिनों तक न बोलने का इसने ढोंग रचा था ? और यह विचार आते ही उसका मन चन्दा पर हज़ार-हज़ार फिटकार बरसाने लगा··· जाने क्यों वह इस कपटी से दूर भागना चाहता हो, इस तरह वहाँ से

वह ज़ोर से भागने लगा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि एक क्षण भी यदि वह खड़ा रहेगा तो····तो वह कपटी स्त्री के मायाजाल में फँस जायगा।

गोपाल को भागते देख चन्दा पागल-सी हो गई···उसकी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। उसे लगा—सारा विश्व अब एक महान् अन्धकार में लुप्त हो रहा है और वह भी अँधेरे में विलीन हो रही है। एक अन्तिम आवाज़ उसके मुख में से निकली—"गोपाल ! मैं निर्दोष······" और फिर······!!

पालू ने जो उसी जंगल में थी ये शब्द सुने। रोज़ सवेरे जल्दी उठकर वह नदी-तीर जंगल में जाती थी। इस वक्त, इस असमय में किसी स्त्री की आवाज़···? उसी दिशा में वह दौड़ी।

थोड़ा-थोड़ा प्रकाश होने लगा था। सवेरे के साढ़े पाँच या छः का समय था।

"कौन ?"

पर किसी ने जवाब न दिया।

"अरे ! कोई स्त्री ! प्रसव-वेदना की अन्तिम घड़ी में ?"

उसने तुरन्त ही अपनी साड़ी निकालकर चन्दा पर डाल दी और उसे आश्वासन देने लगी, पर उसने देखा कि चन्दा बेसुध है।

पंडित गजानन महाशय बारम्बार नींद में बड़बड़ाते थे और चौंक कर जाग उठते थे। एक भयंकर स्वप्न वे देख रहे थे। चन्दा नदी की धार में बही जा रही है। एकाएक उसके शरीर में से एक राक्षस उत्पन्न होकर उनका गला दबाने दौड़ता आता है। एकदम चौंककर वे जाग उठते हैं। ओह ! यह क्या ? धुँए के गुब्बार और ऊपर छप्पर फर-फर जल रहा है ? ओह राम ! यह क्या ? तभी उनको अपना बिछौना जलता हो, ऐसा लगा। ओह ! भगवान् ! यह क्या ? वे घबराकर भागने लगे। सामने का दरवाजा आग की लपटों से घिर गया था।

कहाँ होकर भागूँ, यह उनको नहीं सूझा। पर हिम्मत करके दरवाज़े में से ही कूदकर बाहर आये। उनके कुरते को आग की लपट लगी। उन्होंने देखा कि सारा घर जल रहा है। वे दौड़े और गली में आकर पुकारने लगे—"आग, आग, दौड़ो! दौड़ो!!"

अरे, पर सती? सती भीतर ही रह गई। गाँव के लोग "दौड़ो-दौड़ो" करते गली में आकर जमा हो गए। चिल्ला-चिल्लाकर पंडित गजानन रोने लगे।

"अरे सती? सती तो भीतर ही रह गई।" फिर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे।

"अरे-अरे, सुनती है कि नहीं? आग लगी है—दौड़-दौड़। बाहर आ?"

"क्या है? क्या है?" लोग शोर करने लगे। "सती भीतर ही है?"

"अरे दौड़ो, दौड़ो, कोई भीतर जाओ—उसे उठा लाओ।"

पर लोग चिल्लाने-पुकारने के सिवा अन्दर जाने का नाम नहीं लेते थे। पंडितजी हाँफते हुए दौड़-भाग करते थे, पर भीतर जाने की उनकी भी हिम्मत नहीं थी।

"अरे भगवान्! क्या होगा मेरा?" वे बोले। अन्त में साहस बटोरकर आँगन में आ, भीतर जाने का प्रयास करने लगे, तभी अरर···धम्म···करता छप्पर ऊपर से गिरा और पंडितजी प्राण लेकर भागे और सीधे राधे बाबू के घर की तरफ़ दौड़े।

राधे बाबू सामने ही रास्ते में मिल गए।

उनके चरणों में गिरकर पंडितजी रोने लगे।

"अरे-अरे, राधे बाबू! मैं तो मर गया। मेरा सारा घर जलकर राख हो गया···मेरे पापों का फल मुझे मिला···हे प्रभो! यह अन्तर की आग कैसे बुझाऊँ? मैंने ही पाप किया है, गोपाल बिलकुल निर्दोष है!" वे बोल उठे।

आँखें फाड़कर राधे बाबू ये शब्द सुन रहे थे। थोड़ी देर में

पानी गिरने लगा और आग बुझ गई। सारा घर छान डाला पर सती का पता नहीं लगा।

"पंडितजी! सती माँ तो भीतर घर में थीं ही नहीं, ऐसा मालूम होता है।"

"हें, क्या कहा?" आँखें फाड़कर पंडितजी बोले।

"हाँ···क्योंकि सारा घर छान डाला, पर सती माँ की लाश हाथ नहीं लगी।"

"हें! सच? तो कहाँ गई वह?" रोते-रोते पंडितजी बोले।

"रामजी जाने," कोई बोला।

"पर तुम्हारा कान्हा कहाँ?"

"हें! कान्हा? वह तो रात को यहीं सोया था? वह हरामी गया कहाँ? हे प्रभो! तू करे सो ठीक! इस गरीब ब्राह्मण की लाज रखना मेरे नाथ!"

पालू ने जंगली वनस्पतियों में से एक की जड़ पत्थर पर घिसी, अंजुली में पानी ले, उसमें उसे मिला चन्दा के मुख में डाली। थोड़ी ही देर में चन्दा को चेतना आई। "ओ···माँ···" उसने पुकारा।

"घबराओ मत बहन," पालू बोली।

"कौन?" चन्दा बोली। फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—"तुम कौन हो बहन?"

"मैं हूँ···पालू। पास ही रहती हूँ। घबराना मत हाँ···अभी-अभी एक सुन्दर बालक आएगा।"

ज्यों-ज्यों गोपाल आगे बढ़ता था, त्यों-त्यों एक विचित्र भाव उसे पीछे खींचता था। उसकी अन्तरात्मा उसे हज़ार-हज़ार फटकार देने लगी—छिः छिः गोपाल! एक निराधार स्त्री को ऐसी असहाय अवस्था में छोड़कर तू भागा जा रहा है। छिः छिः! वह एक क्षण रुका। क्या

यह उचित किया है मैंने ? कैसी ही दूषित क्यों न हो वह, पर तब भी उसकी सहायता करना ही उसका धर्म है । और फिर उसे वह रात्रि याद आई जब वह नाव में बैठा था । श्मशान के पास आकर उसे इसी चन्दा का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा था और उसे अपनी नाव में बैठाकर सेठजी की बगिया तक ले गया था। वहाँ उसने उसे पके फल खिलाए थे ।

आज ऐसा क्या हुआ है कि वह उसका तिरस्कार कर रहा है ? वह स्वयं कितना बदल गया है । जन-समूह की टीका से डरकर वह गाँव से भाग आया है···ऐसी दुर्बलता ? ऐसा हृदय-दौर्बल्य !

नहीं-नहीं, ऐसी मन की कमज़ोरी मैं नहीं दिखाऊँगा। उसने ऐसा क्या पाप किया है ? और वह खुद इस कार्य के लिए कलंकित है, यह किसने कहा। जीवन में कौन पाप नहीं करता ? पापी का तिरस्कार करने से तो पाप बढ़ता है, उसे क्षमा कर देने से—स्नेह से—प्रेम से ही पाप घटता है···और उसे एकाएक सती याद आई। सती का सुन्दर मुख, उसका उपदेश उसे याद आने लगा। भाई ! जीवन स्नेह पर निर्भर है, सम्पूर्ण सृष्टि इसी स्नेह पर अवलम्बित है।

और वेग से, जिस तरफ चन्दा पड़ी थी, उसी ओर दौड़ा। दौड़ते-दौड़ते वह प्रार्थना कर रहा था—"हे भगवान् ! उसकी रक्षा करना। मेरी भूल को क्षमा करना।" हाँफता-हाँफता जब वह उस स्थान पर आया तब उसके कानों में बालक की रुदन-ध्वनि-सी पड़ी। बालक के आगमन के साथ ही वह वहाँ पहुँचा। उसने देखा—पालू वहीं है। वह एक शब्द भी नहीं बोला और ज़मीन पर बैठकर उसने चन्दा का सिर अपनी गोद में ले लिया और पुकार उठा—"चन्दा !"

सती भँवर की ओर जाने लगी। कान्हा ने यह देखा। अपने बाहु-बल का सम्पूर्ण उपयोग करके उसने सती का हाथ पकड़ा और ईश्वर का नाम लेकर उसे किनारे की तरफ़ खींचने लगा।

किनारे के पास दोनों आ लगे। इसी समय उनके कानों में भी रोते हुए बालक का स्वर पड़ा और सती बोली—"कौन ?"

और मानो इस "कौन" का उसे उत्तर मिला हो, वैसे गोपाल के शब्द "चन्दा !" सती के कानों में पड़ा।

"कान्हा ! जिसके लिए हमने इतने कष्ट सहे वह मिल गई।" कहकर सती भीगे वस्त्रों ही आगे बढ़ी। सामने देखा तो चन्दा ज़मीन पर पड़ी है······उसका सिर गोपाल की गोद में है। पास ही पालू सद्य-प्रसूत बालक की सम्भाल कर रही है।

"बच्चा-बच्चा !" वह बोल उठी और फिर हँसती-हँसती कहने लगी—

"गोपाल भैया ! बालक का मुँह तो बिलकुल तुम्हारे-जैसा ही है।"

सती यह देखती रही। गोपाल एक शब्द बोला नहीं। पालू बोली—"शरमाने की ज़रूरत नहीं। आप सती माँ हैं न ? मैं आपको पहचान गई हूँ। तुम यहाँ आओगी ही, मेरे भाई को मिलने, यह मैं जानती ही थी। अब देर करने में लाभ नहीं। चलिए।"

बालक प्रसन्न था। वह इतना सुन्दर था कि सती उसे देख आनन्द से पागल ही बन गई। पालू की झोंपड़ी में आज आनन्द रहा।

सती को सब मालूम हो गया था। वह जानती थी कि उसके पति ही दोषी हैं, पर तो भी उसके मुख पर ग्लानि, क्रोध अथवा ईर्ष्या के भाव नहीं थे। वह तो बालक के साथ सारा दिन क्रीड़ा किया करती।

गोपाल चन्दा के पास बैठा था। चन्दा खाट पर सो रही थी। उसका एक हाथ गोपाल की गोद में था। गोपाल चन्दा के बालों से खेल रहा था।

"मेरी प्रार्थना सफल हुई है," चन्दा ने मन्द स्वर में कहा—"अब मुझे दुख या चिन्ता नहीं। इस संसार से चली भी जाऊँ

तब भी अब मुझे दुख नहीं होगा । यह बालक मैं तुम्हें सौंप जाती हूँ ।

"ऐसा मत बोलो बहन," पालू बोली ।

"मैं बचूँगी नहीं," चन्दा ने कहा ।

"जहाँ तक मैं जीवित हूँ, वहाँ तक तुमको मरने नहीं दूँगी समझी !" पालू बोली ।

"सचमुच !" गोपाल ने कहा ।

"मैं तो तुम्हारी गोद में ही मृत्यु पाऊँ, यही इच्छा रखती हूँ ।"

"ऐसा मत बोलो," फिर पालू बोली ।

पर चन्दा की अवस्था दिनों-दिन बिगड़ने लगी । गोपाल चिन्तातुर रहने लगा ।

"पालू बहन !" वह बोला, "यह नहीं बचेगा ।"

"क्या कहा तुमने ? इसका बाल भी बाँका होने का नहीं ।' वह बोली ।

पर कोई भी औषधि उसे अनुकूल नहीं पड़ती दिखाई दी । वह दिनों-दिन क्षीण और दुर्बल होने लगी ।

सती और पालू ने चन्दा की परिचर्या में कोई कमी नहीं रखी ।

कान्हा गाँव में जाकर राधे बाबू से मिला और उनसे सारी बाते कहीं ।

पंडितजी ने सती के समाचार जब सुने तब वे हर्ष से पागल ह गए और राधे बाबू के पास जाकर बोले—

"राधे बाबू ! चलिए । आज ही, अभी ही चल देना चाहिए ।'

भाभी तथा माताजी ने भी साथ चलने की इच्छा प्रदर्शित की ।

एक नाव में राधे बाबू, पंडित गजानन, भाभी, माताजी तथा द पतवार चलाने वाले माँझी बैठे थे और नाव उजाड़ के शान्त जल आगे बढ़ी जा रही थी ।

सन्ध्या होने की तैयारी थी। झोंपड़ी में विषादपूर्ण वातावरण था। गोपाल चन्दा की चारपाई के पास बैठा था।

"चन्दा," वह बोला, "तू चिन्ता क्यों करती है ? अब तो मैं तेरा हूँ न ! तू, यह बालक, और मैं—अपनी सृष्टि अलग···"

चन्दा मुस्कराई। फिर उसकी आँखें मुँद-सी गईं और वह अचेत खाट पर लुढ़क गई !

"ऊ ष !" गोपाल बोला। पालू का बूढ़ा बाप आज दोपहर से ही अदृश्य था। इसी समय वह आ धमका और बोला—

"कैसी है तबियत ?"

किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

वह चन्दा की चारपाई के पास आया और चन्दा की तरफ़ देखने लगा।

"यह अन्तिम औषधि है। इसका असर हो और रात के बारह बजे तक अगर यह आँख खोले तो···" वह अधिक न बोल सका।

सती की आँखों में पानी था। पालू औषधि तैयार करने अन्दर चली गई। बालक सानन्द सो रहा था।

इसी समय राधे बाबू की नौका टेकरो के नीचे आ लगी। वे ऊपर आए। भीतर आकर जब हालत देखी तो स्तब्ध-से हो गए।

पंडित गजानन का चेहरा उतरा हुआ था। वे सती से आँख भी मिलाने की हिम्मत भी नहीं कर सकते थे। पर सती के मुख पर कोई तबदीली दिखाई न दी।

निःस्तब्ध रात्रि। आकाश में बादल। झोंपड़ी में भी ऐसा सन्नाटा कि न पूछो बात !

रात्रि के दस बज चुके थे। पर चन्दा बेहोश थी। ग्यारह बजे, पर उसकी दशा में कोई अन्तर नहीं। साढ़े ग्यारह, पौने बारह, पर वह अचेत पड़ी थी।

गोपाल की मनःस्थिति बड़ी विचित्र थी। वह उसासें ले रहा था।